राजद समाचार

समानता, भाईचारा और आजादी

अंक-11 मासिक जून, 2022 सहयोग राशि - 20 रुपये

इस बार

बीपीएससी विश्वसनीयता को बट्टा 03

महागठबंधन प्रतिनिधि सम्मेलन की रपट 04

संपूर्ण क्रांति पर शिवदयाल 11

गांधी का पहला भाषण : शिवकुमार 15

जाति जनगणना पर संजय कुमार से भेंटवार्ता 16

बिरसा मुंडा पर राजन कुमार 20

विरासत में जयप्रकाश नारायण 22

कवि का पन्ना : श्वेता शेखर : 26

जाति गणना के निहितार्थ

जाति जनगणना एकबार फिर से सुर्खियों में है। इसबार यह चर्चा बिहार से खड़ी हुई है। केन्द्र की भाजपानीत सरकार के न चाहते हुए भी बिहार में तमाम दलों तथा खासतौर से दो परस्पर भिन्न और एक-दूसरे की विरोधी रही– राजद और जदयू ने दो विपरीत गठबंधन में होते हुए भी 'जाति जनगणना' के सवाल पर जो आपसी सहमति और परिपक्वता दिखलाई है वह स्वागत योग्य है। आनेवाले कल के लिए यह गणना एकेडमिक्स और शासन-प्रशासन के संचालन में निश्चय ही एक वृहतर परिप्रेक्ष्य मुहैया कराएगा। राजद-जदयू की इस आपसी सहमति ने भाजपा को झुकने के लिए मजबूर कर दिया है। जाति जनगणना के इस निर्णय में माननीय तेजस्वी यादव की आक्रामकता और नीतीश कुमार की प्रभावी पहल रही है, लेकिन जाति जनगणना न तो नीतीश कुमार का प्रमुख एजेंडा रहा है न यह उनके लिए जीवन-मरन का प्रश्न। अपने गठबंधन दल एनडीए में पिछड़े अति-पिछड़े वर्ग समूह को अपने पक्ष में करने की रणनीति के बतौर उन्होंने एक पाशा के रूप में इसे फेंका है। आनेवाले कल में यह रणनीति उनकी ताकत के रूप में विकसित होगी या कि उनकी कपाल क्रिया करेगी– यह ठीक-ठीक भरोसे के साथ कहना जल्दबाजी होगी। बिहार में नीतीश सरकार ने अबतक जितने आयोग बनाये, शायद ही किसी की अनुशंसा को लागू करने में उनकी कोई दिलचस्पी दिखी हो। वंद्योपाध्याय आयोग, महादलित आयोग और सवर्ण आयोग सब की अनुशंसाओं को उन्होंने ठंढे बस्ते में डाला। आज जितने भी आयोग या निगम हैं, उनके प्रति उनकी उदासीनता उनकी मंशा को बतलाती है। यहां हमें पूरी सतर्कता बरतनी होगी कि कहीं जाति जनगणना की रिपोर्ट को भी वे उसी गतालखाने के हवाले न कर दें।

जाति का विनाश राजद का दीर्घकालिक एजेंडा रहा है, जातिगणना पर राजद की मुखरता उसके इसी एजेंडा का हिस्सा है। यूपीए-2 में लालू प्रसाद ने इसके पक्ष में अपनी आवाज बुलंद की थी। उसी के बाद तत्कालीन कांग्रेसी सरकार ने जाति जनगणना का निर्णय लिया था। विपक्षी एकता फोरम हो या पटना से दिल्ली मार्च करने की घोषणा या प्रधानमंत्री से शिष्टमंडल के साथ मिलकर इसके पक्ष में परिस्थिति पैदा करना– नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव इस सवाल को पूरी संजीदगी से एड्रेस करते रहे हैं। जाहिर है इस गणना के असल प्रेरक कोई और नहीं राजद ही रही है। और यही उसे उसके अंजाम तक भी पहुंचाएगी।

जाति जनगणना को लेकर कांग्रेस और भाजपा दोनों का रवैया खतरनाक ढंग से यथास्थिति बनाये रखने का रहा है। यूपीए-2 की सरकार में बहुत दवाब के बाद जाति गणना की पहल भी की गई तो उसमें तकनीकी खामियां बतला उसे सामने नहीं लाया गया। कौन हैं वे लोग जो जाति गणना से इतना डरे हुए हैं? इस षड्यंत्र में समाज का वह विशेषाधिकार प्राप्त तबका शामिल है, जिसे मालूम है कि अगर यह पब्लिक स्पेस में आ गया तो वंचित

वर्गों के लिए और ज्यादा प्रभावी और विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के लिए घातक साबित होगी। ये विशेषाधिकार प्राप्त समूह हर घात-प्रतिघात लगाकर भी इस गणना को सार्वजनिक नहीं किये जाने में आजतक सफल रहे हैं।

एक बड़ा राजनीति क्लास और सामाजिक समूह यह नहीं चाहते कि जातिगणना की यह प्रक्रिया पूरी हो। इसके पीछे सदियों से प्राप्त उनके वे विशेषाधिकार रहे हैं जो उन्होंने हाशिये के समाज की कीमत पर अपना रखी है। जातिगणना के नतीजे उनके विशेषाधिकार को क्षणभर में मटियामेट कर सकते हैं और एक बड़ा वर्ग जो लगातार संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद इससे वंचित किये जाने के अभिशाप से जूझता रहा है, उनके लिए यह समुन्नत विकास का कारक हो सकता है। बहुत सारे लोग जातिगणना को महज जातियों की गिनती बतला रहे हैं, जो सिक्के का एक पहलू है। सच तो यह है कि इस गणना का उद्देश्य हर उस जाति समूह की शैक्षणिक-आर्थिक स्थिति का तथ्यपरक आकलन करना और तदनुसार उनके समग्र विकास हेतु पहल करना है।

यह सवाल हमेशा बना रहा है कि आजादी के बाद भारतीय राज्य सामाजिक-आर्थिक जनगणना से क्यों कतराता रहा है? आज हम ऐसे युग में रह रहे हैं जिसे आकड़ा युग भी कहा जाता है। आज देश-समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिससे संबंधित आंकड़े मौजूद नहीं हैं। हमारे पास ऐसी तकनीकें हैं जिससे पाताल से लेकर आसमान तक के आंकड़े जुटाए जाते हैं। हमारा पड़ोसी देश नेपाल जो अपनी सामाजिक संरचना में हमारी तरह ही है और कई मायनों में बहुत पिछड़ा हुआ है, दशकों से सफलतापूर्वक जाति जनगणना करता आया है। अतः जाति जनगणना को तकनीकी आधार पर अव्यावहारिक करार देने का तर्क निहायत हास्यास्पद है। यह उनके निहित स्वार्थ को दर्शाता है। यह बहुत सामान्य-सी बात है कि अगर कोई आंकड़ा ही नहीं होगा तो किस आधार पर आप नीति का निर्धारण करेंगे? अमेरिकी सरकार के पास अंतरनस्लीय और अंतर्धामिक विवाहों तक के आंकड़े हैं, इससे वहां की सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन की दिशा का पता चलता है। इन आंकड़ों के चलते अमेरिका एक चेतनशील समाज है। उसे पता है कि वह कहां खड़ा है और किस ओर आगे बढ़ना है।

भारत में एफरमेटिव एक्शन के दशकों बाद भी इससे लाभान्वित समूहों के बारे में मुकम्मल आकड़े मौजूद नहीं हैं। मंडल आयोग ने 20 साल में आरक्षण समीक्षा की बात कही थी। वह आजतक नहीं की गई। यह समीक्षा जाति की मुकम्मल गणना के बाद ही हो सकती है। यह गणना जाति से जुड़े बहुतेरे मिथों और भ्रमों का भी पटाक्षेप करेगी। यह भी संभव है कि यह दोधारी तलवार के रूप में विस्फोट करे। जाति गणना के बाद यह सवाल भी मुखर हो सकता है कि इतने वर्षों से राजनीतिक नेतृत्व ने सिस्टम में बहुजन हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए अबतक क्या किया? यह विभिन्न समूहों के बीच स्पर्धा को भी तेज कर सकती है जो कि हमारे जनतंत्र के लिए स्वास्थ्यकर है। मंडल आयोग की अनुशंसा में ओबीसी की 52 प्रतिशत आबादी का अनुमान था, लेकिन उनका यह आरक्षण आजतक 27 प्रतिशत तक ही सीमित है। इस गणना के फलस्वरूप उनके प्रतिनिधित्व बढ़ाने की मांग एकबार फिर से जोर पकड़ेगी।

यह सुखद है कि बिहार सरकार ने जाति गणना का ऐलान कर दिया है। इससे संबंधित आवश्यक प्रक्रियाएं शुरू कर दी गई हैं। जरूरत इस बात की है कि इस प्रक्रिया में शामिल सरकारी महकमें पूरी तरह प्रशिक्षित किए जाएं और पूरी पारदर्शिता का पालन करें। एक मांग यह भी उठायी जा रही है कि बिहार में कार्यरत सभी सरकारी/अर्ध-सरकारी कर्मियों की भी जाति-जनगणना कराई जाए ताकि यह जाना जा सके कि आरक्षण के चलते किन-किन जातियों का कितना प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। जाति जनगणना की यह प्रक्रिया सतत गति से, सूक्ष्मतम वैज्ञानिक प्रविधि के साथ चले और उसे किसी तरह के घात-प्रतिघात का सामना नहीं करना पड़े।

....

अभी-अभी खबर आयी है कि बिहार के समस्तीपुर में आर्थिक तंगी और ऋण बोझ से परेशान मनोज झा और उनके परिवार के चार लोगों ने सामूहिक आत्महत्या कर ली। श्री झा को 5 बीघा जमीन थी जिसका कुछ हिस्सा गंगा के कटाव और शेष बहन की शादी और आटो निकालने में बिक गया। बतलाया जा रहा है कि शादी में तीन लाख का कर्ज इस परिवार ने ले रखा था। खैनी की दुकान और आटो की कमाई का उनका सारा पैसा वे सूदखोर ही गड़प जा रहे थे। आये दिन उन्हें वह जलील भी करता रहता था। यही दबाव उन्हें आत्महत्या के रास्ते ले गई। आज बिहार के हर गांव में सूद पर पैसे देने का संगठित गिरोह फल-फूल रहा है। इसमें शराब माफिया और अपराधियों का पैसा लगा है। इन दो रसूखवालों के बीच गांव का आम आदमी मनोज झा परिवार की तरह ही घुंट-घुंट कर जीवन-मरन की दो पाटों के बीच पीस रहा है। पिछले वर्षों में बिहार के अलग-अलग हिस्सों में इस तरह की अनेक घटनाएं घटी हैं। यह इस बात का संकेत है कि नई आर्थिक नीति और मुफ्त अनाज योजना ने किस तरह पूरे अर्थतंत्र को बर्बाद किया है।

राजद समाचार का यह अंक थोड़ी बदली हुई परिस्थिति में जल्दीबाजी में आ रहा है। हम चाहते हुए भी कुछ चीजों को शामिल नहीं कर पा रहे हैं। हमारी कोशिश होगी कि यह दूर-दराज के इलाकों में फैले राजद के लाखों-लाख कार्यकर्ताओं का वैचारिक-राजनीतिक मंच बने। हमारी दिली कमाना है कि यह पत्रिका बिहार और देश-विदेश के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक हलचलों का सशक्त दस्तावेज बने। आप सभी सुधी पाठकों का सहयोग और सुझाव अपेक्षित है। – ***अरुण आनंद***

पर्चा लीक प्रकरण

बीपीएससी की विश्वसनीयता को बट्टा

डॉ. सुजीत

बीपीएससी पर्चा लीक मामले में इस संवैधानिक संस्था की कार्यप्रणाली पर कई गंभीर प्रश्न खड़े कर दिए हैं। किसी न किसी कारण से बिहार लोक सेवा आयोग लगातार विवादों के घेरे में है। 48 से 52वीं संयुक्त प्रारंभिक परीक्षा से शुरू हुआ विवादों का यह सिलसिला रुकने के नाम नही ले रहा है। विवादों का धुआं 67वीं प्रारंभिक परीक्षा तक आते-आते आग का रूप ले चुकी है। हद तो तब हो गई जब 67वीं संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा का प्रश्न पत्र लीक होने के मामला प्रकाश में आया और मजबूरन आयोग को परीक्षा रद्द करने की घोषणा करनी पड़ी।

मई 2022 के 8वीं तारीख़ को बिहार के विभिन्न शहरों में बीपीएससी की 67वीं प्रारंभिक परीक्षा ली जा रही थी। इस परीक्षा में लगभग 6 लाख परीक्षार्थी शामिल हो रहे थे। उस समय परीक्षार्थियों के बीच सनसनी फ़ैल गई जब आरा के एक केंद्र पर परीक्षा शुरू होने से पूर्व ही कुछ परीक्षार्थियों को अलग कमरे में प्रश्न पत्र उपलब्ध करवा दिए गए। जैसे किसी ने मजाक बना दिया हो! परीक्षा रद्द कर दी गई। परीक्षा केंद्र से जुड़े कई लोगों को गिरफ्तार किया गया। यक्ष प्रश्न यह है कि उक्त परीक्षा केंद्र पर सैकड़ों परीक्षार्थियों के सेंटर रहे होंगे परंतु उन सैकड़ों छात्रों में से कुछ के लिए समय से पूर्व अलग कमरे में परीक्षा की विशेष व्यवस्था के लिए सम्पर्क किसने किया? यह भी सम्भव है कि इस खेल के पीछे आयोग के अंदर के किसी व्यक्ति का हाथ हो! हो सकता है कि चिह्नित छात्रों का परीक्षा केन्द्र जानबूझकर वहां बनाया गया हो! जिस निजी महाविद्यालय में यह सब हो रहा था वह पहले से ही ब्लैक लिस्टेड था तो फिर इसे परीक्षा केंद्र क्यों बनाया गया? महवपूर्ण प्रश्न यह भी है कि पेपर लीक कहां से हुई है? क्या इसके पीछे वर्षों से चल रहे किसी संगठित गिरोह का हाथ है? क्या इस गिरोह को किन्हीं नामचीनों का वरदहस्त प्राप्त है? आज भी इन प्रश्नों का कोई जवाब नहीं है। आज भी मुख्य अभियुक्त पकड़ से बाहर है। जो गिरफ्तारियां हुई हैं, वे इस अपराध के छोटे मोहरे हैं।

बीपीएससी से जुड़ा यह पहला अप्रिय प्रसंग नहीं है। इससे पहले भी इस संवैधानिक संस्था की कार्यप्रणाली पर संदेह के बादल घिरते रहे हैं। 48वीं से 52वीं प्रारम्भिक परीक्षा को माननीय पटना हाईकोर्ट की सिंगल बेंच ने रद्द कर दिया था। हाल के वर्षों में बिहार लोक सेवा आयोग के अधिकतर परीक्षा व परिणाम विवादास्पद रहे हैं। कभी गलत प्रश्न पत्र को लेकर तो कभी विवादास्पद उत्तर को लेकर बखेड़ा खड़ा होता रहा है। इससे पूर्व 66वीं संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा में भी औरंगाबाद के एक परीक्षा केंद्र से पेपर लीक होने का मामला प्रकाश में आया, पर उस समय केवल औरंगाबाद के दो परीक्षा केंद्र पर संचालित परीक्षा को रद्द कर आयोग ने इस गम्भीर मामले को रफ़ा-दफा कर दिया था। इंटरव्यू में आयोग के सदस्य द्वारा खुलेआम पैसे की मांग के आरोप के कारण आयोग की कार्यप्रणाली लगातार सुर्ख़ियों में रही है। 2019 ई. में आयोग के तात्कालीन सदस्य रामकिशोर सिंह पर इंटरव्यू पास करने के लिए 25 लाख की मांग करने का आरोप लगा। विजिलेंस द्वारा FIR दर्ज कराने व फोरेंसिक लैब चंडीगढ़ द्वारा कथित ऑडियो टेप को सही करार देने पर रामकिशोर सिंह को अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा था। 53वीं से 55वीं संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा के मामले सुप्रीम कोर्ट तक गये। मामला मुख्य परीक्षा में मनमाने ढंग से किसी के नम्बर बढ़ाने व किसी के नम्बर में कटौती से संबंधित था। इसी प्रकार 2014 में बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा शुरू की गई असिस्टेंट प्रोफेसर भर्ती प्रक्रिया भी काफी विवादित रही थी। इस सन्दर्भ में कई मामले माननीय पटना हाईकोर्ट तक गये। यह भर्ती आज तक पूरी नही हुई है। इन घटनाओं की निरंतरता के कारण बिहार लोक सेवा आयोग का पूरे देश में मजाक बन रहा है। लोग BPSC को बिहार पेपर लीक कमीशन का उपमा देने से नहीं चूक रहे हैं।

राज्य लोक सेवा आयोग किसी भी राज्य की सर्वोच्च सेवाओं में भर्ती करने वाली एक संवैधानिक संस्था होती है। इस संस्था के गठन, नियुक्ति, स्वतंत्रता आदि के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 315 में प्रावधान किया गया है। इस संस्था का राज्य स्तरीय लोक सेवकों की भर्ती में विशेष महत्व है। क्योंकि इस संस्था के माध्यम से राज्य सरकार के महत्वपूर्ण सेवाओं को संभालने वाले न केवल नागरिक सेवा व पुलिस सेवा जैसे महत्वपूर्ण लोकसेवकों की भर्ती की जाती है बल्कि यह संस्था न्यायिक सेवाओं में भी भर्ती की जिम्मेदारी संभालती है। राज्य लोक सेवा आयोग की अपनी साख, गरिमा व प्रतिष्ठा होती है। परन्तु जब बिहार लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाओं की साख व विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न खड़े होते हैं तो उस पर गम्भीरता से विचार करने जरूरत है।

अभ्यर्थीगण तैयारी के क्रम में हजारों सपने देखते हैं। उन सपनों को उनके परिवार भी जीते हैं। इन परीक्षाओं में शामिल हजारों ऐसे मेधावी छात्र होते हैं जिनके पिता मजदूरी कर, रिक्शा चलाकर, खेत बेचकर, एक वक्त खाना की कटौती कर अपने बच्चों को तैयारी के लिए शहरों में भेजते हैं। पेपर लीक जैसे मामलों से उनमें शासन की प्रति आक्रोश, निराशा व कुंठा घर करने लगी है। आर्थिक क्षति और समय की बर्बादी होने से उन्हें मानसिक वेदना से गुजरना पड़ रहा है।

आखिर आयोग की साख, प्रतिष्ठा व विश्वसनीयता को हानि पहुंचाने वाले इस घटनाक्रम की जांच माननीय हाईकोर्ट की निगरानी में क्यों नहीं कराई जा रही है? यदि निष्पक्ष जांच नही हुई तो देश-प्रदेश के नौनिहालों के भविष्य को गर्त में डालने का खेल जारी रहेगा।■

साम्प्रदायिकता एवं कुशासन के खिलाफ

महागठबंधन का महाउद्घोष

महागठबंधन प्रतिनिधि सम्मेलन में लालू प्रसाद का डिजिटल संभाषण

'भाजपा-जदयू सरकार के सुशासन, न्याय के साथ विकास और भ्रष्टाचार के प्रति जीरो टॉलरेंस जैसे नैरेटिव लगातार ध्वस्त हुए हैं। भाजपा के उन्मादी बुलडोजर अभियान के सामने नीतीश सरकार आज पूरी तरह सरेंडर कर चुकी है। इस सरकार के डेढ़ दशक से अधिक के शासनकाल में बिहार गरीब राज्यों में सबसे नीचले पायदान पर खड़ा है। मॉब लिंचिंग, अपराध का लगातार बढ़ता ग्राफ, दलित महिलाओं पर हिंसा, दलित गरीबों की जमीन से बेदखली, जहरीली शराब के जरिये नरसंहार, पुलिसिया जुर्म, ड्रग्स जैसे मादक पदार्थों के जरिये युवा जीवन की तबाही, बेरोजगार युवकों की लगातार बढ़ती फौज, 19 लाख युवाओं को रोजगार देने के झूठे वादे, कमरतोड़ महंगाई, मजदूरों का राज्य से पलायन, शिक्षा का आमूलचूल सर्वनाश, कृषि की तबाही, पर्यावरण का विनाश, पुलिसिया जुल्म ढाहने के लिए ड्रैकोनियन पुलिस ऐक्ट लाकर लोकतांत्रिक अधिकारों को ढाहने का प्रयास किया गया है। विडम्बना यह है कि इसका पहला प्रयोग लोकतंत्र की संस्था बिहार विधानसभा को ही कमजोर करने के लिए किया गया। 23 मार्च, 2021 का दिन लोकतंत्र के इतिहास में ऐसे काले अध्याय के रूप में जुड़ गया है जिस दिन विधानसभा के अंदर विधायकों को पुलिस द्वारा पिटाई की गई जिसके लिए नीतीश कुमार हमेशा याद किये जाएंगे।'

यह उद्धरण एनडीए सरकार के खिलाफ महागठबंधन द्वारा जारी 32 पृष्ठों के उस आरोप पत्र की प्रस्तावना से लिए गए हैं जो सम्पूर्ण क्रांति दिवस के मौके पर महागठबंधन प्रतिनिधि सम्मेलन में लोकार्पित किये गए। सीपीआई, सीपीएम, सीपीआई (एम.एल) और राजद के संयुक्त तत्वावधान में पटना के बापू सभागार में संपन्न हुआ यह कार्यक्रम। इस सभा की अध्यक्षता नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव ने की। कार्यक्रम में चारों घटक दलों के बिहार के अलग-अलग हिस्सों से आये सैकड़ों नेताओं और कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। चारों घटक दलों के झंडे और सांप्रदायिक शक्तियों के खिलाफ उनके कार्यकर्ताओ की एकजुटता देखने लायक थी। कार्यक्रम का संचालन राजद के आलोक मेहता और धन्यवाद ज्ञापन पूर्व मंत्री कांति सिंह के द्वारा किया गया। कार्यक्रम में घटक दलों ने सर्वसम्मति से इस संकल्प को दुहराया कि बिहार में फैल

सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता हमारा मूल : तेजस्वी यादव

यह देश टूटेगा या एक रहेगा यह यहां की जनता को फैसला करना है। पूरे देश में आज एक अघोषित आपातकाल लागू है। बिहार में डबल इंजन की नहीं ट्रबुल इंजन की सरकार है। आज न यहां तो संविधान सुरक्षित है न यहां के नौजवान, बेरोजगार। रेल का सेल हो रहा है, बिहार को न विशेष राज्य का दर्जा मिला न विशेष पैकेज का लाभ ही मिल पाया। बनारस को क्योटो बनाने की बात कही गई थी, लेकिन आज नीति आयोग के आंकड़ों को देखिये तो शिक्षा, चिकित्सा सभी मानको पर बिहार फिसड्डी राज्यों में गिना जाता है। यह बेराजगारी का केंद्र बन गया है। शिक्षा का हाल बुरा है। कोई सिस्टम सरकार का काम नहीं कर रहा है। यह सरकार समाज में जहर फैलाने का काम कर रही है। कभी भी सांप्रदायिक शक्तियों के आगे हमने घुटने नहीं टेके। हमलोगों ने जी तोड़ मिहनत की और महागठबंधन को सत्ता में ले आये लेकिन कुछ लोग चोर दरवाजे से सत्ता में आ गए। आज उनके शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार से बिहार की जनता त्रस्त है। बोचहा उप चुनाव महागठबंधन की जीत थी। इस चुनाव के बाद एनडीए का वोट घटा है। इसका कारण हमारे घटक दल रहे हैं। हमारे पिता लालू प्रसाद ने लाठी खाई। आंदोलन किया। और राज्य में सांप्रदायिक शक्तियों को आगे नहीं आने दिया। 74 आंदोलन की शुरुआत गुजरात के इंजीनियरिंग कॉलेज में फीस वृद्धि की मांग को लेकर की गई बाद में इस आंदोलन में बेराजगारी, महंगाई और भ्रष्टाचार के भी मुद्दे जुड़ते चले गए और देश में तानाशाही के खिलाफ लोगों का हुजूम उमड़ा। सैकड़ों लोग जेल गए। देश में तानाशाही के खिलाफ माहौल बना।

मेरी दिली कामना है कि यह महागठबंधन महज सत्ता प्राप्ति के लिए नहीं हो। जो जहर समाज में फैला दिया गया है उसको मिटाने में सदियां लग जाएंगी। यह कैसी विडम्बना है कि कोई भी इस व्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज मुखर करता है तो उसके घर ईडी और सीबीआई छापा मारने को चल पड़ती है। लालू जी ने हमेशा इन शक्तियों से लोहा लिया है और उसकी भारी कीमत उन्हें चुकानी भी पड़ रही है लेकिन हमने अपने सिद्धांतों से आज तक कोई समझौता नहीं किया। यह विचित्र स्थिति देश में पैदा की जा रही है कि जो लोग विस्थापन का सवाल उठाते हैं, सांप्रदायिक जहर को पाटने के बारे में चिंतित रहते हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य,

नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव का महागठबंधन सम्मेलन में संबोधन

खेती किसानी और अमन चैन की बात करते हैं उन्हें देशभक्ती की कसौटी पर छद्म राष्ट्रवाद के सहारे टारगेट किया जाता है। हमें ऐसी सरकार नहीं चाहिए। हम पढ़ाई, दवाई, सिंचाई और कार्रवाई वाली सरकार चाहते हैं। हम ऐसी सरकार चाहते हैं जहां महिलाओं की सुरक्षा की गारंटी हो। हमें मंदिर, मस्जिद और कश्मीर नहीं चाहिए। मैं मानता हूं कि हममें कुछ कमियां रही हैं। विपक्ष की भूमिका लोगों को गोलबंद और जागरूक करने की होनी चाहिए।

महत्वकांक्षा अच्छी बात है लेकिन अति महत्वकांक्षा अच्छी बात नहीं है। अगर हमें पद प्यारा होता तो भाजपा के साथ समझौता करके हम भी मुख्यमंत्री हो जाते, लेकिन हमने ऐसा नहीं किया। आज संघ इस देश को अपने थिंक टैंक गोलवलकर के बंच ऑफ थॉट के आधार पर चलाना चाहती है। आज जरूरत इस बात की है कि हमारा गठबंधन इसके खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष के लिए आगे आये।

आज हमारी सेना तीनों सेना के अध्यक्ष, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति हिन्दू हैं और भारत के किसी राज्य में मुसलमान मुख्यमंत्री नहीं हैं ऐसे में हिन्दू खतरे में कैसे हो सकते हैं। खतरे में तो उनकी कुर्सी है। हमें संघ भाजपा के इस प्रोपेगेंडा से सतर्क रहने की जरूरत है। आज किसी माई के लाल में यह दम नहीं है कि वे मुसलमानों से उनके वोट के अधिकार छीन लें। सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता हमारी पार्टी का मुख्य संकल्प है। इसके लिए हम लगातार संघर्ष करते रहेंगे।

(नेता प्रतिपक्ष का सम्पूर्ण क्रांति दिवस के मौके पर बापू सभागार में महागठबंधन प्रतिनिधि सम्मेलन में दिये गए अध्यक्षीय वक्तव्य का संक्षिप्त अंश।) ■

सीपीआई के महासचिव डी. राजा

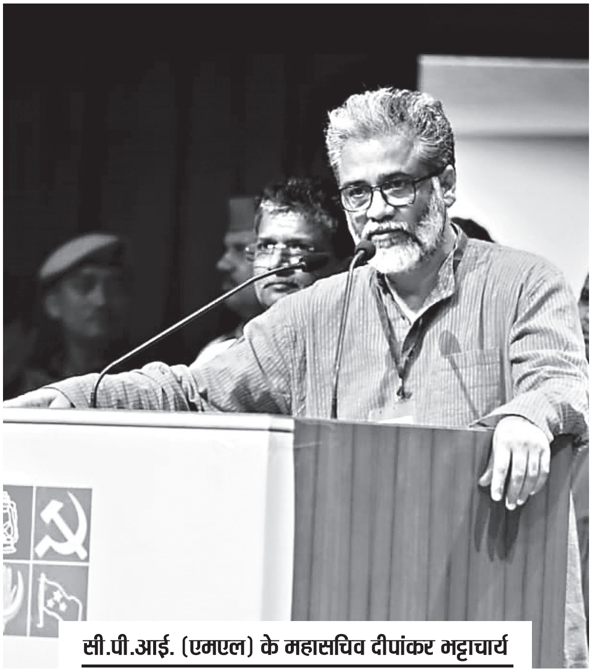

सी.पी.आई. (एमएल) के महासचिव दीपांकर भट्टाचार्य

रही सांप्रदायिक हिंसा, बलात्कार, लूट और गरीबों के घर उजाड़े जाने के खिलाफ महागठबंधन के द्वारा 7 अगस्त को राज्यव्यापी विरोध प्रदर्शन किया जाएगा।

अपने तीन मिनट के डिजिटल संदेश में राजद के राष्ट्रीय अध्यक्ष लालू प्रसाद ने महागठबंधन के प्रतिनिधि सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा कि सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के माध्यम से जेपी ने लंबी और परिवर्तनकारी लड़ाई का आगाज किया था। उनका संकल्प समाज के अंतिम पायदान पर खड़े लोगों को मुख्यधारा में लाना है। उन्होंने तानाशाही के खिलाफ संघर्ष किया। देशभर की जनतांत्रिक पार्टियां उनके आह्वान पर एकजुट हुईं और तानाशाही का खात्मा हुआ। उन्होंने कहा कि फिरकापरस्त ताकतें आज देश को डूबाना चाहती हैं। महंगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार चरम पर है। देश में सिविल वार की स्थिति पैदा कर दी गई है। मैं आपसे इनके खिलाफ लड़ने का आह्वान करता हूं। हम सब को एकजुट होकर लड़ना है। लाखों लोगों को जयप्रकाश जी ने तैयार किया था। मैं सभी को प्रणाम करता हूं और जयप्रकाश जी के चरण में फूल चढाता हूं।

भाकपा माले के महासचिव श्री दीपांकर भट्टाचार्य ने कहा कि सन् 74 भारत की राजनीति का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, लेकिन हम आपका ध्यान इससे 7 साल पहले 67 में हुई नक्सलवादी क्रांति की ओर दिलाना चाहते हैं जो इस देश के राजनीतिक और सामाजिक बदलाव में मिल का पत्थर है। इस आंदोलन के बाद दो बातें हमें दिखलाई पड़ती हैं। पहली यह कि इसके बाद बहुत से राज्यों में चुनाव हुए। जिन राज्यों में कांग्रेस की सरकारें हुआ करती थीं 67 में मध्यावधि चुनाव हुए तो पहली बार 9 राज्यों में बदलाव के संकेत नजर आये। संसदीय विपक्ष मजबूत हुआ और उसे एक धार मिली। दूसरी स्थिति यह हुई कि देश में बड़ा किसान आंदोलन खड़ा हुआ और गरीबों का राज्य स्थापित करने के लिए मजदूर किसानों की एकता मजबूत हुई। बिहार के मुजफ्फरपुर के मुसहरी और भोजपुर के एकबारी में लोगों ने अपनी महान शहादतें दीं। जगदीश मास्टर, और रामेश्वर अहीर सामंती दमन का विरोध करते हुए शहीद हुए। विश्वविद्यालय से पैदा हुआ छात्र आंदोलन बड़ा बदलाव का सूचक रहा है। एक तरफ जहां 74 आंदोलन शहरी आंदोलन के रूप में जन्म ले रहा था उसके पहले से ही नक्लवाड़ी से पैदा हुई चेतना के फलस्वरूप गांव, गरीबों की लड़ाई उभरने लगी थी। हम देखते हैं कि वि.वि. की अलग और हमारी अलग गोलबंदी हो रही थी। तब से आज तक गंगा, कोसी और सोन में बहुत पानी बह गया। जिस प्रकार जेपी आंदोलन का दमन हुआ उसी सख्ती से नक्सली आंदोलन पर भी सत्ता का अंकुश कायम रहा। इस आंदोलन में हमारे कई साथी शहीद हुए। दोनों आंदोलन के सम्पूर्ण दमन के लिए सत्ता आगे आती रही है।

श्री दीपांकर ने कहा कि जेपी आंदोलन से दो धाराएं निकलीं। एक धारा जनता पार्टी से होते हुए बीजेपी के रास्ते गई। उस रास्ते के लोग इस सभागार में नहीं हैं, दूसरा रास्ता हमारे वक्ताओं ने बता दिया। महागठबंधन में शामिल 4

पार्टियां हैं। तीन कम्युनिस्ट धाराओं माले, सीपीआई और सीपीएम है और एक राजद। इनसे हमारे रिश्ते नये हैं। संसदीय राजनीति का हमारा खट्टा-मिट्ठा रास्ता रहा है। 75 का आपातकाल तो खत्म हो गया, लेकिन आज एक अघोषित आपातकाल स्थायी रूप से मौजूद है। अच्छे दिन आज के आपातकाल का नाम है। सीबीआई, ईडी कब किसको जेल में डाल देगी यह कहना मुश्किल है। इस मुल्क को आज ऐसे संकट के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया गया है कि हिन्दुस्तान रहेगा कि नहीं यह सवाल खड़ा हो गया है। सांप्रदायिक हिंसा बहुत बुरी चीज है। और उससे भी बुरी चीज है सांप्रदायिक फासीवाद जो देश की पहचान को ही खत्म कर देना चाहती है। पहले अयोध्या की बात चली और आज वह बात ताजमहल पर पहुंच गई है। जिन प्रतीकों पर हमें नाज था, उसे गुलामी का प्रतीक बतलाया जा रहा है। इससे बड़ी चुनौती आजाद भारत में इससे पहले नहीं आई थी। इस देश की मिट्टी अब लोकतांत्रिक नहीं रह गई। अगर यह देश हिन्दू राष्ट बन गया तो इससे अधिक विपत्ति कुछ हो नहीं सकती। इस बड़े खतरे से निबटने के लिए बड़ी लड़ाई छेड़नी होगी।

श्री दीपांकर ने माना कि सन् 67 का नक्सलबाड़ी आंदोलन और 74 का संपूर्ण क्रांति आंदोलन हमारी विरासत है। गांव और शहर से पैदा हुए इन दोनों आंदोलनों ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की लेकिन आज का निजाम विरोध की हर आवाज को कभी अरबन नक्सल के नाम पर तो कभी हिन्दू भावना के आहत होने के नाम पर कुचलने पर आमादा है। मेरी कामना है कि यह गठबंधन महज विधानसभा चुनाव लड़ने का गठबंधन बनकर न रह जाए, इसे रोज-रोज की लड़ाई का गठबंधन बनाना होगा। सांप्रदायिक शक्तियों की नजर आज बिहार पर है। वे इसे उत्तर प्रदेश की तरह बुलडोजर राज्य बनाना चाहते हैं।

सी.पी.आई के महासचिव श्री डी.राजा ने कहा कि आज देश के सामने बड़ी-बड़ी चुनौतियों का पहाड़ खड़ा है। उन्होंने सवाल उठाये कि आज गरीबी, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार क्यों बढ़ रहे हैं? क्यों? कारण क्या है, क्या यही स्थिति देश के अन्य राज्यों की भी है या वहां स्थितियां कुछ भिन्न हैं? उन्होंने तमिलनाडु और आंध्र को अपेक्षाकृत इन स्थितियों से अलग राज्य के रूप में होने की बात कही। कहा कि मोदी सरकार की न कोई अर्थ नीति है और न ही कोई समाज नीति। उनके प्रधानमंत्री बने 8 साल हो गए, लेकिन उनके अच्छे दिन आने के वादे, वादे ही रह गए। उन्होंने प्रतिप्रश्न किया कि मोदी जी सबका साथ, सबका विकास और सबका साथ के आपके नारे का क्या हुआ? उन्होंने कहा कि आप यहां के किसान, नौजवान और छात्रों के साथ हो या अडानी, अंबानी के साथ? आप पूंजीवाद का साथ दे रहे हो। उन्होंने कहा कि देश में आज नियो लिबरल इकोनॉमी पॉलिसी का दौर चल रहा है। भाजपा और आर.एस.एस. की चर्चा करते हुए श्री राजा ने कहा कि ये वो शक्तियां हैं जो धर्म के नाम पर जनता को विभाजित करके अपना उल्लू सीधा करना चाहती हैं। उन्होंने कहा कि यह देश सभी लोगों का है। आंबेडकर ने हमको संविधान दिया। वह संविधान सबको बराबरी का दर्जा देता है और भाजपा आर.एस.एस. के लोग हिन्दुत्व और मुसलमान के विभाजन के नाम पर देश में दहशतगर्दी कायम करना चाहते हैं। उन्होंने आह्वान किया कि जीने के लिए लड़ो, लड़ने के लिए जीओ और लड़ते-लड़ते आगे बढ़ो।

सी.पी.एम के पोलित ब्यूरो सदस्य श्री अशोक ढावले ने कहा कि सम्पूर्ण क्रांति दिवस की यह 48वीं सालगिरह है। बिहार से यह जर्बदस्त आंदोलन उठा था और तीन महीने के अंदर देश से तानाशाही सरकार उखड़ी थी। उन्होंने कहा कि आज हम संकल्प लें कि सम्पूर्ण क्रांति की 50 वीं सालगिरह जो 2024 में 5 जून को पूरी होगी, उस समय लोकसभा चुनाव भी आनेवाला है। क्योंकि नहीं हम सब बिहार से एक जर्बदस्त आंदोलन का आगाज करें ताकि अघोषित इमरजेंसी में जी रही जनता को सुकून मिले। श्री ढावले ने 1990 के उस दौर का स्मरण साझा किया जब रामकृष्ण आडवाणी की सांप्रदायिक रथ यात्रा कई राज्यों से आते हुए बिहार पहुंचने को थी। उस समय एक ही मुख्यमंत्री था जिसने रथ यात्रा को रोक दिया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। वह थे लालू प्रसाद। बिहार में इस सांप्रदायिक रथ यात्रा को रोका गया। उन्होंने कहा कि राजद और वामपंथी पार्टियों ने सांप्रदायिकता के साथ कभी समझौता नहीं किया। लोहिया भक्त नीतीश आज भाजपा के सामने घटना टेक दिये हैं। दरअसल ये अवसरवादी हैं इनके खिलाफ भी हमें संघर्ष करना है। उन्होंने कहा कि आज बिहार मानव विकास सूचकांक में 36 नंबर पर है। महिलाओं के मामले में हम 24 वें स्थान पर हैं। 13 करोड़ की हमारी आबादी में 6 करोड़ से ज्यादा लोग कुपोषण के शिकार हैं। ये हमारी जनसंख्या के 52 प्रतिशत हैं। 2006 में बिहार में नीतीश कुमार ने पूरी मंडी सिस्टम ही खत्म कर दी। नतीजा निकला की धान की एम.एस.पी जहां 1924 रुपया है वह धान किसान हजार-बारह सौ में बेच रहे हैं। यही बात गेहूं पर भी लागू है। 2019 में हमारे यहां 6 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे थे वही 2020 में साढ़े 13 करोड़ और 2021 में 20 करोड़ लोग मोदी राज में गरीबी रेखा के नीचे चले गए। 116 देशों में भारत का नंबर 101वें स्थान पर चला गया। 2013 में

44 करोड़ लोग काम पर थे। मोदी ने कहा था कि वे हर साल 2 करोड़ लोगों को नौकरियां देंगे उस हिसाब से 60 करोड़ लोगों को काम मिल जाना चाहिए था, लेकिन काम पर उनकी संख्या घटकर 38 करोड़ पर आ गई। उन्होंने कहा कि मोदी और नीतीश सरकार बांटो और राज्य करो की तर्ज पर शासन चला रहे हैं। उन्होंने फैज की यह पंक्ति साझा कीः

'यूं ही हमेशा उलझती रही जुल्म से खल्क/न उनकी रस्म नई है न उनकी रीत नई

यूं ही हमेशा खिलाये हैं हमने आग में फूल/न उनकी हार नई है, न अपनी जीत नई।'

उनसे पहले राजद के प्रदेश अध्यक्ष श्री जगदानंद सिंह ने कहा कि 74 का सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन लोहिया की सप्तक्रांति ही थी जिसमें नर-नारी समता और धार्मिक सौहार्द्र की बात कही गई थी। उन्होंने कहा कि हम सब को आज पुनः क्रांति की मशाल जलाने के लिए तैयार होना है, क्योंकि 2022 में 1974 से ज्यादा भयानक स्थिति इस देश की हो गई है। संविधान को कुचला जा रहा है। उन्होंने कहा कि जेपी को लोकनायक की पदवी लालू जी ने ही दी थी। व्यवस्था ने जेपी को जेल में बंद करके उन्हें रोगी बनाकर हमसे छिन लिया। आज पुनः उसी व्यवस्था ने लालू जी को भी किडनी का शिकार बना दिया है। श्री जगदानंद ने कहा कि एक समय में आपातकाल हमपर थोपा गया। आज का अघोषित आपातकाल आफतकाल है। आज संपूर्ण भारत धधक रहा है जिस दिन यह ज्वाला फुट उठी तो एक बड़ा उद्वेलन इस देश में होगा। देश बचाने की हम सब पर आज बहुत बड़ी जवाबदेही है। आज की यह सत्ता लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद को पैरों तले रौंद रही है।

सीपीआई के राष्ट्रीय सचिव अतुल अनजान ने कहा कि आज देश विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है। इस बदले परिवेश में विपक्ष, नौजवान विपक्ष, समतावादी सांप्रदायिक शक्तियों के खिलाफ भूमिका क्या हो इसपर विचार किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि आज देश की अर्थव्यवस्था तबाही के रास्ते पर है। पहले एक डॉलर की कीमत 64 रुपये के बराबर थी आज उसकी कीमत 78 रुपये के बराबर हो गई है। फिर भी हमारे प्रधानमंत्री को इस बेशर्मी पर एतराज नहीं है। 40 साल में बैंक तबाह हो रहे हैं। फिक्स पर 5 प्रतिशत दिये जा रहे हैं और महंगाई 6.7 प्रतिशत हो गई है। यह देश कर्जदार हो गया है और चौथा खंभा कुंठित लुंठित होकर मरणासन्न है। उसे इस देश से कोई लेना-देना नहीं। लोगों को घसीट-घसीट कर मारा जा रहा है। बिहार के अंदर परिवर्तन की जरूरत है। महागठबंधन की है ललकार, बदलो, बदलो मोदी सरकार। बड़ी विपक्षी पार्टियां पस्त हैं। सरकार सिर्फ खुदाई करने के अभियान में लगी है कि कहां शिवलिंग है और कहां राम हैं। फासीवादी ताकतों को रौद देना है ताकि वे उठ न सकें। हमारी स्थिति यह है कि कपड़ा सूखाने वाली रस्सी भी चीन से आ रही है। किसान तबाह हो गए। बीज, खाद, यूरिया के दाम बढ़ गए। एम.एस.पी. में कितना कवर होता है। किसान मजबूर होकर कम कीमत पर धान गेहूं बेचते हैं यह दोहरी लूट है। सरकार खामोश है। रुपये की कीमत घटती जा रही है। बैंकों को विदेशी कम्पनियों के हाथों बेचा जा रहा है।

भाकपा माले के पोलित ब्यूरो सदस्य श्री धीरेंद्र झा ने कहा कि 74 आंदोलन ने जो नौजवानों को जगाने का काम किया। पटना वि.वि. के नेता लालू जी भी परिवर्तन की उस जमीन को तैयार करने में शामिल रहे, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण देश में बदलाव की आंधी चल पड़ी। पटना सिनेट हॉल में प्रस्ताव पारित हुआ कि जो सरकार महंगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार दूर नहीं करेगी उस सरकार को चलने नहीं दिया जाएंगा। आज देश 70 के दशक से भी बदहाल स्थिति में चला गया है। 29 लाख लोगों का राशन कार्ड जब्त कर सरकार उनपर बुलडोजर चलवा रही है। बड़ी संख्या में सरकारी नौकरियां खत्म की जा रही हैं। बिहार के समस्तीपुर, अररिया और सिवान आदि अंचलों में अल्पसंख्यकों, महिलाओं और गरीबों पर सुनियोजित हमले बढ़ते जा रहे हैं। यहां की खेती किसानी से भी नीतीश को कोई मतलब नहीं रह गया है। नीतीश सिर्फ 5 कि.मी. की सरकार चला रहे हैं। हम नीतीश और दिल्ली तख्त पर बैठे मोदी को इस सम्मेलन के माध्यम से कड़ी पटखनी देंगे।

सीपीएम के पूर्व राज्य सचिव अवधेश कुमार ने कहा कि बिहार में डबल इंजन की सरकार विफल है। उसके चलते बिहार की जनता की परेशानियां बढ़ती जा रही है। फासीवादी, साम्प्रदायिक ताकतों के सामने नीतीश ने घुटने टेक दिये हैं। अल्पसंख्यक, गरीबों पर दिन-प्रति-दिन हमले तेज होते गए हैं। यहां जारी होनेवाला रिपोर्ट कार्ड उनसे सवाल करेगा। बिहार की जनता आपसे इस्तिफा मांगती है। आप ही के द्वारा गठित बंद्योपाध्याय आयोग ने गरीबों को 10 डिसमिल जमीन देने की बात कही थी। आपने आज तक इस काम को नहीं किया। हर साल बिहार में लाखों परिवार बाढ़ से विस्थापित होते हैं। बिहार में बुलडोजर राज चल रहा है। इसके लिए हम हर तरह की कुर्बानी देंगे।

बिहार की पूर्व मंत्री एवं राजद नेतृ अनीता देवी ने प्रधानमंत्री मोदी और बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की चर्चा करते हुए कहा कि ये प्रचारित करते रहे हैं कि बिहार में बहार है, लेकिन सच तो यह है कि यहां के लोग बदहाल हैं, फटेहाल हैं, एमबीए पास युवकों को रोजगार नहीं मिल रहा। सभी अपनी किस्मत

संपूर्ण क्रांति दिवस पर पटना के बापू सभागार में महागठबंधन प्रतिनिधि सम्मेलन में उपस्थित नेतागण।

पर रो रहे हैं। नीतीश कुमार ने किसानों का समर्थन मूल्य 2006 में ही खत्म कर दिया जिसके कारण यहां के मजदूर, किसान आत्मदाह करने की स्थिति में आ गए हैं। डीजल, पेट्रोल और गैस के दाम लगातार बढ़ रहे हैं। जेपी ने 74 में बदलाव किया था इसी बिहार से। आज हम गांव-गांव से अलख जगाएं ताकि यह जनविरोधी सरकार दुबारा सत्ता में न आये।

सीपीआई के राज्य सचिव रामरेश पांडेय ने कहा कि बिहार में चारों ओर अपराध, भ्रष्टाचार और अफरशाही का बोलबाला है। यहां एक भी स्वास्थ्य उपकेंद्र नहीं चल रहा है। हर केंद्र पर ताला लगा है। परीक्षा देनेवाले छात्रों के प्रश्नपत्र पहले ही लिक हो जा रहे हैं। करोड़ों लोग गृहविहीन हैं, गांव के मजदूर विवश और लाचार हैं। ऐसे में एक बड़े आंदोलन ही एक रास्ता बचता है।

सीपीएम के राज्य सचिव ललन चौधरी ने कहा कि बिहार में संकट गहरा है। समय रहते अगर इसका समाधान नहीं निकाला गया तो स्थिति बदतर ही होती जाएगी। उन्होंने कहा कि नीतीश सरकार ने बिहार के हर विभागों में गांधी सिद्धांत का फोटो टंगवा रखा है जिसमें पहला ही वाक्य है सिद्धांत के बिना राजनीति। आप तो पाखंड कर रहे हैं किसके साथ गठबंधन करके सत्ता में आये और कहां चले गए? आप कहते थे जीरो टॉलरेंस, एक रुपये का भ्रष्टाचार आपको बर्दाश्त नहीं। आज आलम यह है कि बिहार सरकार का एक विभाग ऐसा नहीं जहां रिश्वत न ली जाती हो, बजट का 60 प्रतिशत व्हाईट मनी में बदला जा रहा है। हत्या, बलात्कार, बैंक लूट, और एटीएम तोड़ने की घटनाओं को क्या हम कानून का राज कहेंगे। कानून का राज नहीं है यह। आज झूठे मुकदमें में नागरिकों के एक वर्ग को प्रशासन फंसाने का काम कर रही है। उन्होंने कहा कि विधानसभा चुनाव में विपक्ष का अंतर मात्र 12 हजार मतों का रहा। दो तीन पंचायत के बराबर के मत हैं, वह भी बेईमानी के कारण सत्ता ने यह जीत हासिल की।

राजद के प्रधान महासचिव अब्दुल बारी सिद्दिकी ने कहा कि संपूर्ण क्रांति का यह दिन हमलोगों के लिए ऐतिहासिक दिन है। आज ही के दिन जेपी ने सम्पूर्ण क्रांति की घोषणा की थी। जेपी का उद्देश्य महज सत्ता परिवर्तन तक ही सीमित नहीं था। वे चाहते थे कि समाज से दलित शोषित का भेदभाव मिटे, समाज की जो कुरीतियां हैं उसका सफाया हो। सिद्दिकी ने कहा कि किसी संगठन में बहस और आंदोलन न हो तो समझिये वह संगठन मृत हो गया। उन्होंने कहा कि आज शिक्षा के नाम पर हम अशिक्षित लोगों की जमात पैदा कर रहे हैं। आज समाज को शिक्षित-प्रशिक्षित करने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि आज देश में भय, घृणा और द्वेष का वातावरण संगठित रूप से पैदा किया जा रहा है। जिनके हाथ में शासन है वही इस माहौल को बनाये रखना चाहते हैं। ये वे लोग हैं जिनका इस देश की आजादी के आंदोलन में कोई रॉल नहीं रहा है, लेकिन यह विडम्बनापूर्ण बात है कि वे ही आज आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं और देशभक्ति का सर्टिफिकेट भी बांट रहे हैं। अभी की लड़ाई आसान नहीं है। आज मीडिया का भी चरित्र परिवर्तित हो गया है। जो वह आज परोस रही है आज का युवा उसे ग्रहण कर रहा है। हमारी चुनौती बड़ी है जबतक हम इस देश की अखंडता को कायम करने के लिए आगे नहीं आएंगे वे हमें कभी हिन्दू के नाम पर तो कभी मुसमान के नाम पर, कभी अगड़ा के नाम पर तो कभी दलित के नाम पर बांटते रहेंगे। उन्होंने कहा कि लड़ाई बड़ी है, अभी तो यह अंगड़ाई है, आगे बड़ी लड़ाई है।

सीपीआई (एम.एल) के पोलित ब्यूरो सदस्य श्री राजाराम सिंह ने कहा कि आज सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन मनाने की जवाबदेही उनको नहीं है जो सत्ता में हैं। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार आज बिहार को पुलिस राज में तब्दील करना चाहते हैं। उन्होंने विधानसभा में पुलिस एक्ट लाया। जब माननीय सदस्यों ने उसका विरोध किया तो सदन में पुलिस से

उनके ऊपर हमले करवाये गये। उन्होंने कहा कि इस हमले को हमारे विधायकों ने सहा। लोकतंत्र को हमने जिंदा रखा है। यहां से देशभर में लड़ाई चलेगी। आज किसानों को उनका लाभकारी मूल्य नहीं मिल रहा है, आज यहां से यह संकल्प लेकर हम निकलें कि वर्तमान शासन व्यवस्था को हटाना है।

सीपीआई नेता एवं पूर्व सांसद नागेन्द्र ओझा ने कहा कि सम्पूर्ण क्रांति के दौर में दिनकर जी का यह नारा 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' काफी लोकप्रिय हुआ था। यह उस समय युवकों की जुवान पर था। आज देश में उसी तरह की स्थिति पैदा हो गई है। कोरोना काल की चर्चा करते हुए श्री ओझा ने कहा कि उस दौर में 45 लाख से ज्यादा मजदूर तबाह हुए। सरकार ने उनकी कोई मदद नहीं की। मजदूर साइकिल, मोटरसाइकिल और पांव पैदल किसी तरह अपने घर को लौटे। आज अपने बिहार में उनके लिए काम नहीं है। गिट्टी तोड़नेवाले लोगों को आजतक सरकार ने वास का स्थान नहीं दिया। उल्टे वे जिस जमीन पर बसे हैं बड़े पैमाने पर उनके घरों पर बुलडोजर चलाये जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि नीतीश जी सत्ता के लिए सती नहीं न होइये, जनता से किये गए वादा को पूरे कीजिए।

भाकपा माले की केंद्रीय समिति सदस्य श्री केडी यादव ने 74 आंदोलन का अनुभव साझा करते हुए कहा कि आज ही के दिन 74 में पटना के गांधी मैदान में लाखों-लाख छात्र नौजवानों ने बिहार और हिन्दुस्तान को बदलने का संकल्प लिया था। उनकी इसी आकांक्षा को देखते हुए जेपी ने सम्पूर्ण क्रांति का नारा दिया था। उन्होंने कहा कि सत्ता में बैठे मोदी उनकी नाजायज संतान हैं, वह हिटलर और मुसोलिनी की संतान हैं। उस दौर में भी हिटलर की आकांक्षा को पूरी करने के लिए कुछ सोशलिस्टों ने उसका साथ दिया था, आज भी इस मोदी की सहायता में सोशलिस्ट कैम्प के कुछ लीडर लगे हुए हैं। उन्होंने कहा कि यह सरकार अभिव्यक्ति की आजादी को बुलंद करनेवाले रविकांत, रतनलाल और अविनाश दास जैसे बौद्धिकों को जेल में डालने का कुचक्र रच रही है। वह अभिव्यक्ति की आजादी को खत्म कर देना चाहती है। बिहार में शिक्षा और स्वास्थ्य का हाल बुरा है। इस सत्तासीन सरकार को सम्पूर्ण क्रांति दिवस मनाने का कोई हक नहीं है। उन्होंने आह्वान किया कि हम सब 74 से भी बड़ी लड़ाई के लिए तैयार हो जाएं इसके लिए जो भी कुर्बानी देनी पड़े हम तैयार रहें। भगत सिंह और आंबेडकर के रास्ते इसके लिए हमें अख्तियार करने होंगे।

राजद के राज्यसभा सांसद अशफाक करीम ने कहा कि आज का दिन ऐतिहासिक है। 74 के बाद आज का दिन दूसरी तारीख के रूप में महत्वपूर्ण साबित होगी। इस मुल्क में पिछड़े, दलित, मुस्लिम और आदिवासियों पर सुनियोजित हमले बढ़ते जा रहे हैं। कटिहार में पुलिस बेगुनाहों पर ही एफआईआर दर्ज कर रही है। यह स्थिति असह्य है। हमें संगठित होकर देश को इस स्थिति से बाहर निकालने की हर कोशिश करनी चाहिए।

पूर्व राज्यसभा सदस्य श्री शिवानंद तिवारी ने कहा कि आज ही के दिन जेपी ने सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन की घोषणा की थी, आज जो भी नेता हैं वहीं से उपजे हैं। उन्होंने 74 के दौर का प्रभाष जोशी से जुड़ा स्मरण साझा किया। कहा कि प्रभाष जोशी ने जेपी को बतलाया था कि आपकी गिरफ्तारी हो सकती है। इसपर जेपी ने कहा था कि मेरी गिरफ्तारी होगी तो गंगा में आग लग जाएगी। जेपी गिरफ्तार हुए लेकिन कोई हलचल नहीं हुई। इंदिरा के आपातकाल और मोदी के अघोषित आपातकाल की चर्चा करते हुए श्री तिवारी ने कहा कि दोनों में बड़ा फर्क है। आपातकाल के बाद इन्दिरा गांधी और संजय गांधी चुनाव हार गए। क्योंकि उनके पास तब जनसमर्थन नहीं रह गया था। लेकिन दिल्ली की सरकार के पीछे जन समर्थन भी है। मोदी को पिछड़े, अति पिछड़े और सामाजिक न्याय के लोगों का समर्थन प्राप्त है। आज उन्होंने इस देश का हाल यह बना दिया है कि कभी भी गृहयुद्ध की स्थिति पैदा हो सकती है। देश में ऐसा पहली बार हो रहा है कि जिसने दंगा भड़काया वह आराम से है और जिनने दंगों को रोकने की कोशिश की, सरकार उनके उपर बुलडोजर चलवा रही है। एक ही रास्ता है वह है संघर्ष का। किसान आंदोलन ने 3 कृषि कानून को वापस लेने के लिए सरकार को बाध्य किया। पिछले चुनाव में नेता प्रतिपक्ष ने बेरोजगारी को मुद्दा बनाया और मोदी को भी उस मुद्दे पर आना पड़ा।

सीपीएम नेता श्री अजय कुमार ने कहा कि आज देश सहित बिहार की हालत बद-से-बदतर होती जा रही है। अल्पसंख्यकों एवं दलितों पर बुलडोजर चलाया जा रहा है और सरकार मूकदर्शक बनी इस तमाशे को देख रही है। हमें संघर्ष के रास्ते इस स्थिति को बदलने के लिए आगे आना होगा।

कार्यक्रम का संचालन कर रहे राजद विधायक आलोक मेहता ने कहा कि आज देश की हालत आपातकाल से कम नाजुक नहीं है। आयोजन के लिए सम्पूर्ण क्रांति के इस दिन का चुनाव भी इसीलिए किया गया ताकि देश के अंदर बढ़ रही फिरकापरस्त ताकतों के खिलाफ हम एकजुट हों।

कार्यक्रम में रामचंद्र पूर्वे, जयप्रकाश नारायण यादव, उदय नारायण चौधरी, रामबली सिंह चंद्रवंशी, महबूब आलम, मनोज झा और श्याम रजक आदि नेता भी मंच पर विराजमान रहे। ■

संपूर्ण क्रांति का प्रस्थान बिंदु

शिवदयाल

अगर उम्र के लिहाज से विचार करें तो सम्पूर्ण क्रांति सामाजिक परिवर्तन की सर्वथा नई अवधारणा है। इसकी उद्घोषणा को महज 48 वर्ष हुए हैं। यों तो विचारधारा बनते-बनते बनती है लेकिन सम्पूर्ण क्रांति की अवधारणा के बारे में राजनीतिकों, समाजविज्ञानियों अथवा परिवर्तनकामी समूहों में कोई एक राय नहीं है। सब जगह अलग-अलग ढंग से इसकी व्याख्या की जाती है और शायद आगे भी की जाती रहेगी, बल्कि यह आकस्मिक भी नहीं है क्योंकि 'जीवंत विचार' के प्रति प्रायः कोई एक मत होता नहीं, उसकी जीवतंता का तकाजा ही यही है कि अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों और परिस्थितियों में यह नया स्वरूप ग्रहण करती रहे, पुनर्नवा होती रहे।

संपूर्ण क्रांति का कोई शास्त्र नहीं है। इस मायने में यह 'खुला' विचार है, लेकिन ये दोनों शब्द 'संपूर्ण' और 'क्रांति' इसकी सीमा और स्वरूप बनाते हैं। यहां क्रांति शब्द अपनी समस्त प्रगतिशील और रैडिकल्जिम के साथ उपस्थित है। वास्तव में संपूर्ण क्रांति 'समग्र परिवर्तन' नहीं है जैसा कि कुछ लोग अंदाजा लगाते हैं। क्रांति तो क्रांति ही है वह परिवर्तनपात्रा नहीं है, परिवर्तन तो प्रकृति के नियमों के अनुसार सतत् रूप से चलता ही रहता है, आज जो है वह कल उसी रूप में नहीं होगा। परिवर्तन होता है जबकि क्रांति लाई जाती है। इस मुद्दे पर कोई भ्रम की गुजांइश नहीं है। क्रांति के साथ जो शब्द युग्म बनाता है वह है 'संपूर्ण'। पहले कभी क्रांति के साथ संपूर्ण या अपूर्ण का ऐसा प्रयोग नहीं हुआ और यदि जेपी ने इस बहाने क्रांति की संपूर्णता की ओर इशारा किया तो यह अनायास नहीं है। 'संपूर्ण' शब्द ने लोगों को खूब भरमाया है और अलग-अलग क्षेत्र और विचार के लोगों ने इसे अपने ढंग से, अपनी सुविधा के हिसाब से परिभाषित करने की कोशिश भी की है। स्वयं जेपी के ही कुछ साथियों ने 'संपूर्ण क्रांति' को रहस्यमय और उलझी हुई शब्दावली करार दिया। लेकिन जेपी ने अनायास ही इस शब्द-युग्म का इस्तेमाल कर दिया हो, ऐसा मानना भूल होगी।

इतिहास बीसवीं शताब्दी को क्रांतियों की शताब्दी के रूप में भी याद करेगा। मानव-मुक्ति के लिए मात्र सौ सालों के अंदर इतने सघन प्रयास इसके पहले कभी नहीं हुए। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में शोषितों व वंचितों की मुक्ति के लिए क्रांतियां हुईं। रूस, चीन, कोरिया, वियतनाम, क्यूबा जैसे देशों में क्रांतियों का सफल संचालन किया गया, लेकिन जेपी इन क्रांतियों को अपूर्ण और एकांगी मानते थे। उनकी मान्यता में इन देशों में क्रांति का अभीष्ट पूरा नहीं हो पाया था। सिर्फ क्रांति के तरीकों अथवा 'साधन' को लेकर उनका विरोध रहा हो, ऐसा नहीं। इन देशों में जो नई व्यवस्थाएं आईं, जेपी की दृष्टि में उस ढांचे में मनुष्य की मुक्ति संभव ही नहीं थी, बल्कि उन देशों में एक नई तरह की गुलामी आमजन को झेलनी पड़ी-सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के नाम पर। सोवियत साम्राज्यवाद और चीन की सांस्कृतिक क्रांति ने क्रांति का एक वीभत्स रूप दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया। जेपी का मार्क्सवाद के ऐसे 'क्रियान्वयन' (application) से मौलिक मतभेद था। स्वतंत्रता जेपी के जीवन का आकाशदीप थी। वे व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को क्रांति की अपनी अवधारणा में सर्वोच्च मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। मार्क्सवाद का प्रचलित सिद्धांत इसके विलोम में खड़ा था। जेपी क्रांति को मनुष्य की संपूर्ण क्रांति के रूप में परिभाषित करते थे जिसमें रोटी, कपड़ा और मकान सुलभ कराना ही अंतिम लक्ष्य नहीं था बल्कि ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें सबसे कमजोर व्यक्ति भी अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके, स्वतंत्रता व स्वाभिमान के साथ जी सकें।

जहां तक क्रांति के अभीष्ट का सवाल है, 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के चार मूल्य स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं बंधुत्व मानव समाज को बहुत आगे ले जाते हैं। वास्तव में ये मानव सभ्यता-संस्कृति के शाश्वत मूल्य बन गए हैं। इन चार लक्ष्यों में भी स्वतंत्रता प्रथमाप्रथम है। जयप्रकाश जिस पीढ़ी और दौर का नेतृत्व करते हैं उसके लिए ब्रिटिश साम्राज्यशाही से मुक्ति ही पहला मूल्य था। आश्चर्य नहीं कि लाख मार्क्सवादी होने के बावजूद वे 'स्वतंत्रता' के साथ समझौता नहीं कर सके। गांधीजी के प्रथम सत्याग्रह आंदोलन की याद करते वे लिखते हैं- "यही वह समय था जब स्वतंत्रता मेरे जीवन का आकाशदीप बनी। कालांतर में वह स्वतंत्रता अपने देश की स्वतंत्रता मात्र के भाव का अतिक्रमण करके मनुष्य की सब जगह और सब प्रकार के बंधनों से ही मुक्ति नहीं, बल्कि इससे भी आगे बढ़कर मानवीय व्यक्तित्व की स्वतंत्रता, विचार की स्वतंत्रता, आत्मा की स्वतंत्रता की अर्थदात्री बन

जनसमूह को संबोधित करते जयप्रकाश

गई। यह स्वतंत्रता जीवन की एक निष्ठा बन गई है। मैं रोटी के लिए, सत्ता के लिए, सुरक्षा के लिए, समृद्धि के लिए, राज्य की प्रतिष्ठा के लिए या किसी अन्य वस्तु के लिए इसके साथ समझौता नहीं कर सकता।" स्वतंत्रता के मूल्य के प्रति उनकी यह प्रतिबद्धता उन्हें भारत में दूसरे-तीसरे दशक के मार्क्सवादी 'लाइन' से अलग दिशा में ले गई और उसके पश्चात् भी उन्हें शोध की नई मंजिलें तलाशने पर विवश किया। वे इसके लिए 'करो या मरो' के निर्णायक क्षणों में हजारीबाग जेल से फरार हो सकते थे, सक्रिय दलगत राजनीति को लात मार सकते थे, कश्मीर और नागालैंड पर गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी अलग स्टैंड ले सकते थे, 72 वर्ष की उम्र में पटने के बेली रोड पर लाठियां खा सकते थे, करोड़ों हम वतनों की आजादी और नागरिक अधिकारों की गारंटी सुनिश्चित करने के लिए राजनीतिक सौदेबाजों से राजघाट में दूसरी आजादी के लिए एक होने की कसमें दिलवा सकते थे। जेपी को स्वतंत्रता की परिकल्पना में व्यष्टि और समष्टि एक हैं, उसमें कहीं कोई द्वैत नहीं है, उन्होंने हर मौके पर इसे साबित किया।

स्वतंत्रता आंदोलन उदात्त मूल्यों के आधार पर लड़ा गया लेकिन पच्चीस सालों के अंदर ही सिर्फ सत्ता के स्तर पर ही नहीं 'लोक' के स्तर पर भी इनका तेजी से क्षरण हुआ। जिसके लिए जेपी ने सर्वस्व न्योछावर कर दिया वह सर्वोदय आंदोलन भी ठहराव का शिकार हो गया था, यद्यपि मूल्य और विचार के रूप में सर्वोदय में अब भी बहुत आकर्षण था, लेकिन मात्र हृदय-परिवर्तन की युक्ति साधारण भारतीय की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त न कर सकी। यह एक आकस्मिक संयोग था कि बिहार के छात्रों ने जेपी से 18 मार्च 1974 से आरंभ हुए आंदोलन का नेतृत्व संभालने का आग्रह किया, क्योंकि सरकारी दमन से वे एकदम विचलित हो गए थे। जेपी को क्षितिज पर संभावनाओं की रेख दिख पड़ी। छात्रों की प्रमुख चार मांगों - महंगाई दूर करो, बेकारी दूर करो, भ्रष्टाचार खत्म करो, शिक्षा व्यवस्था को सुधारो- में स्पष्ट ही व्यवस्था-परिवर्तन की आकांक्षा से साक्षात् हुआ। बाद में उन्होंने इस आंदोलन को संपूर्ण क्रांति का आंदोलन करार दिया। उल्लेखनीय है कि आजादी के पश्चात् क्रांति का आवाहन इसके पहले सिर्फ उग्र वामपंथी आंदोलनों के माध्यम से तेलांगाना और नक्सलबाड़ी में ही आया था। ऐसे में जीवनदानी जयप्रकाश द्वारा क्रांति का आवाहन अपने आप में एक विलक्षण घटना है जिसने भारतीय समाज और राजनीति में आई जड़ता को तोड़ा। अपने मुसहरी प्रयोग के दौरान जेपी ने नक्सलपंथ के वैचारिक और व्यावहारिक सीमाओं का गहराई से अवलोकन किया (किंतु उन्होंने उसके औचित्य और प्रासंगिकता को चुनौती नहीं दी।) कुछ लोग समझते हैं कि संपूर्ण क्रांति की अवधारणा में जो सातत्य का पक्ष है वह उसके साधनों की शुद्धता, अर्थात् शांतिमयता अथवा अहिंसा के कारण है। जेपी ने कई बार कहा है कि यह मानना एक बड़ी भूल है कि हिंसक क्रांति का आधार आनन-फानन में तैयार किया जा सकता है, या कि हिंसक क्रांति समय-साध्य नहीं है। बल्कि हिंसक क्रांति के पश्चात् परिवर्तन के जो फलित होते हैं उन्हें सुस्थिर करने में काफी समय लगता है। कभी तो हिंसा-प्रतिहिंसा का लंबा दौर चलता है और कभी क्रांति के नायकों की आपसी प्रतिस्पर्धाओं में क्रांति का सुफल ही नष्ट हो जाता है। इसी से हिंसक क्रांतियों में विपथगमन की गुंजाइश भी ज्यादा होती है और वस्तुतः आज तक कोई भी क्रांति अपने को विपथगा होने से रोक नहीं पाई। ऐसे में क्रांति के लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिसमें वह अपने को 'नयी' करती रहे, अपना शोधन करती रह सके। क्रांति में सातत्य का यही अर्थ है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जेपी के लिए स्वतंत्रता सर्वोच्च मानवीय मूल्य है इसलिए उनकी क्रांति के केन्द्र में है व्यक्ति। व्यक्ति की स्वतंत्रता के बिना सामूहिक स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं- अन्य देशों में हुई क्रांतियों का यह अनुभव जेपी के लिए प्रयोज्य नहीं था। दूसरी ओर उनके पीछे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत थी जो परिवर्तन के लिए हिंसा या अधिनायकत्व की अपरिहार्यता का निषेध करती थी।

क्रांति शब्द का जिन अर्थों में हम प्रयोग करते हैं वह भारत के जातीय अनुभव का हिस्सा नहीं है। भारत एक प्राचीन देश है, इसकी सभ्यता-संस्कृति बहुत पुरानी है। जब आज के विकसित देश आदिम अवस्था में ही थे भारत में सभ्यता का

अलख जग चुका था और सभ्य समाज की कई सारी संस्थाएं अस्तित्व में आ चुकी थीं। भारत की जलवायु, जीवनदायिनी नदियों, उर्वर भूमि के कारण एक सुव्यवस्थित जीवन-प्रणाली आकार ले चुकी थी। लेकिन प्राचीन समाज होने के बावजूद यहां की जनसंख्यात्मक (डेमोग्रैफिक) वास्तविकताएं बदलती रही हैं। क्या विचित्र बात है कि ऊपरी तौर पर जाति जैसी

> **ब्रिटिशकाल में यदि भारत में औद्योगिक पूंजीवाद आया तो उससे त्राण दिलाने के विचार भी सामने आए। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान आया तो सामाजिक परिवर्तन संबंधी अवधारणाएं भी आईं। 1917 की रूसी क्रांति ने जिस प्रकार मार्क्सवाद को जमीन पर उतार दिखाया, उससे भारत सहित दुनिया के अन्य कई देश क्रांति के संभाव्य क्षेत्र बन गए। परिवर्तन की आकांक्षा रखनेवाला शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिस पर बोल्शेविकवाद का प्रभाव नहीं पड़ा हो।**

संस्थाओं के रहते दृढ़ और अविचल दिखने के बावजूद भारतीय समाज लगातार बदलता रहा है। लगभग हर काल में यहां नयी-नयी सामाजिक इकाइयों और वर्गों का उदय होता रहा है जिन्होंने भारतीय समाज के साथ सामंजस्य बिठाने अथवा ठौर ढूंढ़ने के लिए यहां की जाति-व्यवस्था में आश्रय ढूंढ़ा है। भारत का बहुलतावादी सामाजिक ढांचा एक सतत् सामाजिक प्रक्रिया के माध्यम से बना, जो आज तक जारी है। जिस सांस्कृतिक सम्मिलन (cultural assimilation) की बात की जाती है वह दरअसल यही प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया ने भारतीय समाज को कई प्रकार की अतियों से बचाये रखा है, जैसे - धार्मिक राज्यों (theocratic states) का अस्तित्व यहां नहीं रहा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बनी रही, राजा का जमीन पर स्वामित्व नहीं रहा बल्कि किसान का रहा, शक्ति का कोई भी सिरा सर्वसत्तावादी नहीं हो पाया....। किंतु यहां आशय भारतीय समाज और शासन व्यवस्था को निर्दोष करार देना नहीं है बल्कि यह इशारा करना भर है कि पाश्चात्य समाज की जमीनी वास्तविकताएं भारतीय सामाजिक वास्तविकताओं से भिन्न रही हैं। यही कारण है कि भारतीय समाज में शायद ही किसी काल में 'हठात् परिवर्तन' के प्रति कोई ऐसी तत्परता या आग्रह दिखाई देता हो। यहां चीजें बनते-बनते बन जाती रही हैं। यदि भारत के सामाजिक इतिहास पर दृष्टि डालें तो यहां सुधार आंदोलनों की एक अविच्छिन्न कड़ी दिखाई देती है जिससे समय-समय पर जड़ता टूटी और समाज जीवंत बना रहा। विरासत की वह कड़ी आज भी विलुप्त नहीं हुई है, वह चौतरफे हमले का शिकार जरूर है।

किंतु ब्रिटिश काल तक हालात बदल गए। ब्रिटिश औपनिवेशिक दोहन ने भारतीय समाज व अर्थतंत्र के आत्मनिर्भर ढांचे को ही तोड़ दिया। अंग्रेजों की मार्फत जो औद्योगीकरण भारत में पहुंचा, उसने औद्योगिक मजदूरों के एक नये वर्ग को तो जन्म दिया ही, शहरी मध्यवर्ग की परिधि का भी विस्तार किया। दूसरी ओर ग्रामीण अर्थतंत्र चरमराने से कृषि मजदूरों का भी एक नया वर्ग अस्तित्व में आया। अट्ठारहवीं सदी के मध्य तक, ऊपर जिस विरासत का जिक्र किया गया, वह समाज की प्रमुख चालक-शक्ति नहीं रह गई, हम अन्तर्राष्ट्रीय औपनिवेशिक तंत्र का हिस्सा बन गए। जब यूरोप में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् पूंजीवाद आया तो मुनाफाखोरी, प्रतिद्वंद्विता और शोषण जैसे दुर्गुणों को रोकने के लिए वहां कोई संस्थागत ढांचा पहले से तैयार न था। जो कुछ था वह चर्च और राजशाही के इर्द-गिर्द सिमटा था। ऐसे में शोषित और वंचित जन (जिन्हें कार्ल मार्क्स ने 'सर्वहारा' की संज्ञा दी) की मुक्ति के लिए 'क्रांति' ही एक मात्र उपाय बचा। वास्तव ने पूंजीवादी शोषण ने क्रांति को औचित्य ही प्रदान किया। सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है कि यदि औद्योगिक क्रांति भारत में हुई होती तो आज अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद का स्वरूप क्या होता। वैसे उन्नीसवीं सदी तक भारतीय मनीषा का जोर मुख्यतः भाषा, साहित्य और नीतिशास्त्र पर ही रहा, वैज्ञानिक खोजों की कोई सार्थक दिशा नहीं बन पाई। इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि हमारे यहां ज्ञान-विज्ञान की कोई स्वतंत्र और स्वायत्त शाखा नहीं बन पाई, यह क्षेत्र एक तरह से धर्म (पंथ नहीं) के विषय-क्षेत्र में ही आवेष्टित रहा।

ब्रिटिशकाल में यदि भारत में औद्योगिक पूंजीवाद आया तो उससे त्राण दिलाने के विचार भी सामने आये। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान आया तो सामाजिक परिवर्तन संबंधी अवधारणाएं भी आईं। 1917 की रूसी क्रांति ने जिस प्रकार मार्क्सवाद को जमीन पर उतार दिखाया, उससे भारत सहित दुनिया के अन्य कई देश क्रांति के संभाव्य क्षेत्र बन गए। परिवर्तन की आकांक्षा रखनेवाला शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हों जिस पर बोल्शेविकवाद का प्रभाव नहीं पड़ा हो। दुनिया के प्रायः हर देश में रूसी क्रांति ने मार्क्सवादियों अथवा वामपंथियों की एक

पीढ़ी तैयार की। उच्च शिक्षा प्राप्त करने गए स्वयं जेपी अमेरिका से मार्क्सवाद में दीक्षित होकर लौटे, लेकिन भारत में परिस्थितियां भिन्न थीं, यहां जब विदेशी शासन से मुक्ति के लिए राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में था जिन्होंने चरखा, अछूतोद्धार और सांप्रदायिक एकता के महत्वपूर्ण आयाम इसमें जोड़कर इसे सामाजिक-आर्थिक मुक्ति का भी आंदोलन बना दिया। विलक्षण बात यह थी कि गांधीजी ने भारतीय समाज के शुभ-पक्षों व प्रगतिशील तत्वों को संघटित कर स्वराज्य की जो परिकल्पना प्रस्तुत की उससे दुनिया भर के मुक्ति आंदोलनों को नई दिशा और ऊर्जा मिल सकती थी। जिस विरासत का ऊपर उल्लेख किया गया, गांधीजी को रोशनी उसी से मिली और अपने हिसाब से उन्होंने क्रांति का एक नया मार्ग प्रशस्त किया। बहुत लोगों को गांधी के साथ क्रांति शब्द जोड़ने पर आपत्ति हो सकती है लेकिन उन्होंने साध्य और साधन को लेकर जो स्थापनाएं प्रस्तुत की वे आधारभूत बदलाव की ओर इंगित करती थीं और इस मायने में उनकी प्रासंगिकता अब तक बनी हुई है। यही बात जेपी को सर्वोदय की ओर खींच लाई थी। सर्वोदय आंदोलन ने शुरूआत में सफलता के कई सोपान तय किए, बिहार में भूमिहीनों को सबसे ज्यादा जमीन भूदान के माध्यम से ही मिली। किंतु सर्वोदय में संघर्ष का पक्ष अछूता रह गया, उसमें गांधीजी के 'रैडिकलिज्म' का अभाव था, उसका कोई राजनीतिक स्वरूप नहीं बन पाया (गांधीजी हर दृष्टि से राजनीतिक व्यक्तित्व थे और एक राजनीतिक आंदोलन की अगुआई कर रहे थे)। जिस परिमाण में संसदीय लोकतंत्र आमजन से विमुख होता जा रहा था, स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्य तिरोहित हो रहे थे, उसके लिए एक व्यापक राजनीतिक पहल की जरूरत थी। इन प्रवृत्तियों से राजनीतिक स्तर पर ही प्रभावी ढंग से निपटा जा सकता था। सर्वोदय ने यह मौका गंवा दिया था। जेपी द्वारा सन् 74 में संपूर्ण क्रांति का शंखनाद इसी खोये हुए अवसर को दोबारा उपलब्ध करने का उपक्रम था।

संपूर्ण क्रांति के आवाहनकर्ता जयप्रकाश एक बदले हुए विचारक और नायक हैं। वे शोधन की प्रक्रिया से उबरकर अवतरित होते हैं। वे परिवर्तन के लिए वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता से इनकार नहीं करते। वे शोषितों और मजलूमों का संगठन चाहते हैं, अर्थात् वर्ग संगठन की अनवरत प्रक्रिया चलाना चाहते हैं। वे व्यवस्था परिवर्तन के लिए युवाओं को गांवों में भेजते हैं और उन्हें क्रांति का संवाहक घोषित करते हैं, और इसके लिए उनसे 'वर्गीय आग्रहों से रहित', अर्थात् 'De-classed' होने की अपेक्षा रखते हैं। वे छात्र-युवा 'संघर्ष वाहिनी' के नाम से एक अर्द्ध-सैनिक संगठन का निर्माण करते हैं और स्वयं उसका सेनापतित्व स्वीकार करते हैं। संपूर्ण क्रांति के प्रति संपूर्ण प्रतिबद्धता इसका लक्ष्य भी है और कार्यक्रम भी। वे वाहिनी कार्यकर्ताओं को व्यवस्था परिवर्तन के आंदोलन का आरंभ करने के लिए भूमि का सवाल हाथ में लेने को कहते हैं और बिहार के सबसे बड़े भूधारी-बोधगया के शंकराचार्य मठ के खिलाफ शांतिमय लड़ाई की अनुमति देते हैं। वे लोकसमितियों के माध्यम से लोकशक्ति संगठित कर राज्य-शक्ति पर अंकुश लगाना चाहते हैं। वे शक्ति और सत्ता का पिरामिड उलट देना चाहते हैं। वे संसदीय लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का क्रांतिकारी इस्तेमाल चाहते हैं। वे किसी भी कीमत पर लोकतंत्र को बचाना चाहते हैं- सिर्फ इसलिए नहीं कि आजादी बरकरार रहे, बल्कि इसलिए भी कि क्रांति का, परिवर्तन का मार्ग सुगम हो। स्वतंत्रता उनके जीवन का आकाशदीप है और वे हीन-से-हीन व्यक्ति को भी इसे सुलभ कराना चाहते हैं। सच्ची स्वतंत्रता के लिए वे न सिर्फ अर्थ, समाज और शिक्षा वरन् परम्परा, धर्म, आस्था और नैतिकता को भी संपूर्ण क्रांति के दायरे में ले आते हैं (ये क्षेत्र हिंसक साधनों की पहुंच के बाहर हैं, रूस और पूर्वी यूरोप के हाल के अनुभव इसका सबूत हैं)।

आज सोवियत समाजवाद की समाप्ति के पश्चात् दुनिया में हर कहीं वामपंथ बचाव की मुद्रा में है। एकध्रुवीय विश्व में वैश्वीकीकरण एवं बाजारीकरण के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पकड़ने का साहस किसी में नहीं दिखाई देता। भारत के वैचारिक समुदाय में कुछ लोग इन दिनों गांधी और मार्क्स के 'ब्लेंड' की, यानी दोनों विचारधाराओं को एक-दूसरे के लिए निकट लाने की बात कह रहे हैं। उन्हें संपूर्ण क्रांति के वैचारिक और व्यावहारिक पक्षों का बारीकी से अध्ययन करना चाहिए। बोधगया भूमि आंदोलन और गंगा मुक्ति आंदोलन जैसे जन संघर्षों की सफलता इस बात का प्रमाण है कि संपूर्ण क्रांति का एक ठोस वैचारिक और व्यावहारिक आधार है। पिछड़े और वंचित वर्गों की संपूर्ण क्रांति आंदोलन में व्यापक भागीदारी, इन वर्गों में आई अभूतपूर्व राजनीतिक और सामाजिक चेतना ने परिवर्तन की आधार-भूमि तैयार कर दी है। अगर क्रांति के संदर्भ में चेतना के इस उभार को मूल्यबद्ध और संस्कारित किया जा सकता तो समय के इसी पड़ाव पर संपूर्ण क्रांति का प्रस्थान बिंदु अवस्थित है।

(सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन पर लेखक का एक उपन्यास 'एक और दुनिया होती' नाम से प्रकाशित है। सीवान उनकी जन्मभूमि है और पटना कर्मभूमि।) ■

गांधी का भारत में पहला सार्वजनिक भाषण

शिवकुमार

14 जनवरी 1916 में वसंत पंचमी के दिन वाराणसी में गंगातट पर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का शिलान्यास हुआ।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना वर्ष में गांधी का एक व्याख्यान हुआ था। यह गांधी का भारत में दिया गया पहला सार्वजनिक संबोधन था।

इस कार्यक्रम में गांधी कौतूहल के केंद्र थे क्योंकि 1915 में दक्षिण अफ्रीका में 21 साल गुजारने के बाद वे भारत लौटे थे और उनके राजनीतिक गुरु श्री गोपालकृष्ण गोखले ने उनसे यह कहा था कि जब तक कि वे भारत को अच्छी तरह समझ न लें वे कोई सार्वजनिक वक्तव्य नहीं देंगे, कोई सार्वजनिक हस्तक्षेप नहीं करेंगे, क्योंकि भारत को वे कायदे से जानते नहीं हैं। इसलिए BHU में 1916 का वक्तव्य गांधी का पहला महत्वपूर्ण वक्तव्य था। उस समारोह की अध्यक्षता श्रीमती एनिबेसेन्ट कर रहीं थीं और वे भारतीय मूल की नहीं थीं। उस समारोह में राजे रजवाड़े और राजकुमार बैठे हुए थे तथा देश के अनेक गवर्नरों, वाइसराय, अनेक शिक्षाविद वैज्ञानिक एवं समाजसेवी भी वहां उपस्थित थे।

गांधी ने अपने भाषण अंग्रेजी में देते हुए कहा कि "उनमें इस बात से लज्जा तथा अपमान का भाव पैदा हो रहा है क्योंकि उन पर अपने देशवासियों को किसी विदेशी भाषा में संबोधित करने के लिए दबाव डाला गया।"

उनकी इस साफगोई को सुनकर वहां पर मौजूद तमाम लोग सन्न रह गए। गांधी यहीं नहीं रुके उन्होंने राजे-रजवाड़ों और राजकुमारों की ओर मुखातिब होते हुए कहा कि "यहां जो राजे-राजबाड़े और राजकुमार हीरे जवाहरात से लदे हुए हैं उनमें गरीबों का खून है और यह देश तब तक आजाद नहीं होगा जब तक कि आप इन गहनों को उतारकर नहीं फेंक देते।"

ध्यान रहे इन राजे-रजवाड़ों ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को एक बड़ी धनराशि दी थी, सहयोग दिया था, मदनमोहन मालवीय के अथक परिश्रम के चलते। गांधी उस कार्यक्रम में बुलाये जाते हैं। एक तरह से गांधी भारत में नवागन्तुक हैं। यहां के राजनैतिक परिदृश्य पर उनकी कोई बड़ी हैसियत नहीं है। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो किया है उसके कारण वे कौतूहल के केंद्र हैं।

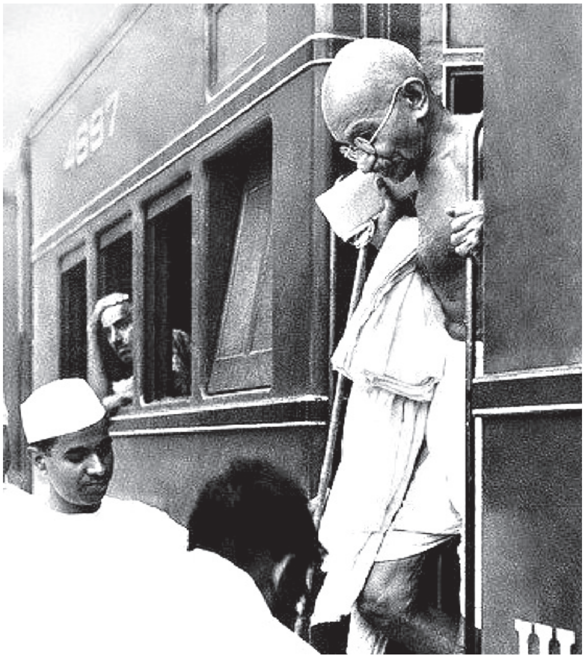

गांधी के वक्तव्य से सभागार में हलचल मच जाती है। राजे-राजवाड़े उठकर जाने लगते हैं, एनिबेसेन्ट उन्हें रोकती हैं वे गांधी को भी भाषण में दो तीन बार बीच में टोकती हैं। लेकिन सभागार में मौजूद लोग कहते हैं कि गांधी को बोलने दिया जाए। इस पूरे घटनाक्रम से हमें जो चीज गांधी से सीखना चाहिए वह है निर्भयता का सतत अभ्यास।

गांधी यह ख्याल नहीं करते हैं कि वे अभी भारत आये हैं, सार्वजनिक जीवन उन्हें शुरू करना है और ये सब अत्यंत प्रभावशाली लोग हैं। एनिबेसेन्ट की अपनी आभा है। गांधी स्पष्टता से अपनी बात कह रहे हैं जो समाज के प्रभावशाली तबके को नाखुश कर सकती है।

मदनमोहन मालवीय और गांधी दोनों के विचारों में हर जगह साम्य नहीं है। लेकिन स्वयं मालवीय, गांधी का आदर करते हैं और गांधी, मालवीय का।

इतिहासकार कहते हैं कि गांधी जी के उक्त भाषण को सुनकर लोगों को समझ में आ गया था कि ये शख्स आगे चलकर देश को नेतृत्व देगा और ये राजे-राजवाड़े एक दिन इनकी शरण में होंगे। ये अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जड़ें उखाड़ देगा और हुआ भी यही। ■

जातिगत जनगणना से मंडल-2 का आगाज : संजय कुमार

सीएसडीएस, नई दिल्ली के निदेशक प्रो. संजय कुमार देश के प्रख्यात चुनाव विश्लेषक हैं। जातिगत जनगणना को लेकर देश भर में उठ रहे सवालों के मद्देनजर फारवर्ड प्रेस के हिंदी संपादक नवल किशोर कुमार से विशेष साक्षात्कार में प्रो. कुमार न केवल जातिगत जनगणना को अहमियत देते हैं बल्कि वे मंडल-2 आंदोलन का आगाज भी बताते हैं। प्रस्तुत है यह विशेष साक्षात्कार

प्रो. संजय कुमार, निदेशक, सीएसडीएस, नई दिल्ली

सैफोलॉजी के हिसाब से जातिगत जनगणना का महत्व क्या है?

सैफोलॉजी में आंकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि चुनाव में क्या नतीजे आएंगे। किस समुदाय के वोटरों की संख्या कितनी है, किस समुदाय के लोगों ने किनको वोट दिया, किस समुदाय ने बहुत ही कम वोट दिये, यह पता ही न हो कि उनकी आबादी कितनी है– इन सबकी चिंता खासकर होती है। लेकिन सैफोलॉजी अलग-अलग समुदाय के वोटरों का आंकलन सटीक तरीके से उपलब्ध कराने का कार्य करता है। वर्तमान में दलितों और आदिवासियों की मतदाताओं की संख्या उनकी जनगणना होने के नाते हमें जानकारी होती है, लेकिन ओबीसी समुदाय की चर्चा नहीं हो पाती। बिहार, तमिलनाडु और यूपी जैसे कई राज्यों में ओबीसी कितने हैं, इस बात की जानकारी हमें नहीं हो पाती है। इसी तरह उच्च जातियों की संख्या के बारे में भी हमें पता नहीं है। ये आंकड़े सैफोलॉजिकल इंटरप्रेटेशंस या चुनावी नतीजों के अध्ययन के लिए बहुत जरूरी होते हैं।

क्या जातिगत जनगणना होने पर देश या राज्यों के स्तर पर राजनीतिक समीकरण भी बदलेंगे?

अगर आप पोस्ट मंडल राजनीति को देखें, पूरे भारत की बात न भी की जाए तो भी इससे पूरे उत्तर भारत की राजनीति में जबर्दस्त परिवर्तन आया था। वी.पी. सिंह की सरकार बनी और मंडल कमीशन को लागू किया गया। इसके पश्चात उत्तर भारत में खासकर यूपी और बिहार की सूरत ही बदल गयी। इसके पहले इन राज्यों में उच्च जातियों की राजनीति का पूरी तरह से वर्चस्व था। अब कोई भी पार्टी दोनों राज्यों में ओबीसी को नजरंदाज कर राजनीति नहीं कर सकती। वे राजनीति भले ही कर लें लेकिन चुनाव में सफल नहीं हो सकते। मैं इसे मंडल-एक कहता हूं। इस दौर में यूपी और बिहार की राजनीति में आमूल-चूल परिवर्तन आया। मुझे लगता है कि अगर जातिगत जनगणना होती है तो दुबारा ओबीसी का मुद्दा सबसे आगे आ जाएगा। जो पार्टियां पोस्ट मंडल पालिटिक्स से उभर कर आयी थीं, जिनका कई सालों से जनता में आकर्षण कम हो रहा था, उनके जनाधार में गिरावट आ रही थी, उन्हें फिर से इस मुद्दे से नया जीवनदान मिल जाएगा।

आज लगभग सभी पार्टियां ओबीसी की जनगणना को लेकर एकमत हैं। पिछड़ा वर्ग का नेतृत्व करने वाली पार्टियां भी जातिगत जनगणना के सवाल को मुखरता से उठा रही है। क्या आज की राजनीति में अगड़ा और पिछड़ा अहम हो गया है?

पोस्ट मंडल के काल में चुनावी राजनीति अगड़े और पिछड़े में ध्रुवीकृत होती थी। 1990 में जब मंडल कमीशन की रिपोर्ट वी.पी. सिंह ने लागू किया, उस समय ऐसा लग रहा था कि अपर कास्ट की राजनीतिक जमीन उनके पैरों तले खिसक रही है, या उन्हें समय लगेगा कि इस राजनीति पर नियंत्रण पाने में। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। ऊंची जाति की पार्टियां ओबीसी

राजनीति का सहारा लेकर आगे बढ़ती हैं। इससे अगड़ों और पिछड़ों में पूरा ध्रुवीकरण हुआ। ये पार्टियां पिछड़ों का सहारा लेकर, उन्हें चैम्पियन के रूप में घोषित करने लगीं। इस तरह उन्हें पिछड़े वर्ग के वोटरों पर ध्यान देना पड़ा। अगर हम पोस्ट मंडल पॉलिटिक्स की बात करें, तो पूरी राजनीति बिहार और यूपी से धीरे-धीरे राजस्थान या हरियाणा की तरफ जाना शुरू हुई। पिछले 30 सालों से अगड़े और पिछड़े की राजनीति चल रही है। अगर पिछड़ी जातियों की जनगणना की जाए तो उन्हें दोबारा नया जीवनदान मिलेगा। पहले से चल रही अगड़े और पिछड़े की राजनीति में धार और पैनापन भी बढ़ेगा।

जातिगत जनगणना की मांग करने वालों का तर्क है कि जब जातिगत जनगणना में आंकड़े आएंगे, तब पिछड़े वर्गों के विकास के लिए सरकार समुचित योजनायें एवं नीतियों का निर्माण कर सकेगी। इस तर्क में कितना दम है?

दलितों और आदिवासियों के कल्याण के लिए नीतियां इसी आधार पर बनती हैं कि जनगणना में उन्हें 15 प्रतिशत और 7.5 प्रतिशत बताया गया है। चाहे आरक्षण या छात्रवृत्ति की बात हो, उन्हें सभी सरकारी योजनाओं में लाभ उनके जनसंख्या के आधार पर मिलता है। जब ओबीसी की बात होती है तो उनकी जनगणना नहीं होने के नाते उन्हें सरकारी स्कीमों का लाभ नहीं मिल पाता है। जब मंडल कमीशन को लागू किया गया था तब उनके लिए आरक्षण 27 प्रतिशत पर फ्रीज कर दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि रिजर्वेशन 50 प्रतिशत की सीमा पार नहीं कर सकता है। इस तरह ओबीसी का रिजर्वेशन 27 पर फ्रीज कर दिया गया। इसके बावजूद भी इस सीमा को हटाने के लिए डिबेट चल रही है। जिस तरह दलित-आदिवासियों को उनकी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण मिल रहा है, उसी तरह ओबीसी को भी आरक्षण दिया जाए। अगर जातिगत जनगणना हुई तो ओबीसी के आंकड़े जरूर सामने आएंगे। मुझे लगता है कि जब सरकार की तरफ से ये आंकड़े आ जाएंगे, तब यह मांग दोबारा जोर पकड़ेगी कि ओबीसी की आबादी 40-50 प्रतिशत है तो उन्हें इतना आरक्षण मिलना चाहिए। जिन पार्टियों का जनाधार ओबीसी में है, जिन्होंने ओबीसी की राजनीति की है, वे इस मांग को पुरजोर तरीके से देश के पटल पर लाने की कोशिश करेंगे। वे कहेंगे कि भले ही सरकार ने आपको 27 प्रतिशत आरक्षण दिया है, फिर भी आपके साथ अन्याय हो रहा है। न्यायसंगत होगा कि हमें भी दलितों और आदिवासियों की तरह जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया जाए। अब तो इस तरह की मांग जरूरी उठती दिखाई पड़ती है।

सुप्रीम कोर्ट ने ही अधिकतम 50 प्रतिशत की सीमा तय कर रखी है, जबकि मंडल कमीशन की रिपोर्ट ने 52 प्रतिशत आबादी का अनुमान लगाया था लेकिन ओबीसी को 27 प्रतिशत ही आरक्षण दिया जा रहा है। मान लीजिए ओबीसी की आबादी 60 प्रतिशत जनगणना में हो जाती है तो सुप्रीम कोर्ट के उस निर्णय के अनुसार उसे 30-35 प्रतिशत ही आरक्षण मिलेगा?

यह कानूनी पहलुओं पर निर्भर करेगा कि उनकी डिमांड तर्कसंगत है या नहीं। लेकिन सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाली पार्टियां एवं नेता, पिछले 25-30 सालों में जिनकी दूसरी पीढ़ी आ गई है, जिनके हाथों में लीडरशिप है, जो मानने लगे थे कि उनकी मांग अब पुरानी होने लगी है, उनका फिर से नया जन्म होगा। वे इस मुद्दे पर काम करेंगे, पूरे देश भर में पार्टियां और उनके नेता उनके इर्द-गिर्द गोलबंद होंगे। राजनीति एक नई दिशा ले सकती है। इसका मतलब ये भी नहीं है कि वर्तमान में ओबीसी की राजनीति नहीं हो रही है। मगर इससे ओबीसी राजनीति में और ज्यादा पैनापन आ जाएगा। उन्हें राजनीति करने का नया प्लेटफॉर्म मिलेगा। हालांकि वे प्लेटफॉर्म पर पहले भी खड़े थे, लेकिन उस पर कमजोर दिखाई देते थे, इस राजनीति पर उनकी पकड़ कमजोर होती दिख रही थी। लेकिन जैसे ही ये आंकड़े आएंगे उनकी पकड़ फिर दोबारा मजबूत होगी। वे जाति के आधार पर आरक्षण की मांग उठाएंगे। देश की बड़ी पार्टियां चाहे उनकी सरकार भी हो इसका विरोध नहीं कर पाएंगे।

एक पक्ष और भी है कि जातिगत जनगणना के आंकड़े आने पर पिछले तीन-चार दशकों से सत्ता में रहने वाले पिछड़े वर्ग के नेताओं पर भी सवाल उठाया जाएगा कि उन्होंने इस बीच क्या किया?

केंद्र या राज्य में जिन पार्टियों को लगेगा कि उनके राजनीति की जमीन पैरों के नीचे से खिसक रही है तो वे इस तरह के जरूर आरोप लगाने की कोशिश करेंगे। क्योंकि इन पार्टियों का जनाधार ओबीसी के आधार पर ही टिका हुआ है। वे उन्हें आईना दिखाने की जरूर कोशिश करेंगे कि आप आईने में अपना चेहरा देख लीजिए कि आपने क्या किया है। आपकी राज्यों एवं केंद्र में भी हिस्सेदारी रही है। लेकिन मुझे लगता है कि इस मुद्दे की काट क्षेत्रीय पार्टियां जरूर निकालेंगी। वे इस तर्क को लेकर आ सकते हैं कि हमलोगों ने प्रयास किया था

> **उच्च जातियों का झुकाव जिस तरीके से बीजेपी के साथ है, वैसा दूसरे समुदाय या जाति का नहीं है, जब ये आंकड़े सामने आयेंगे, उच्च जातियों एवं ओबीसी की संख्या कितनी हैं, तब तस्वीर दूसरी होगी। अगर ऐसा संदेश जाने लगा कि दूसरी पार्टियां ओबीसी के मुद्दे को ज्यादा प्रबल तरीके से उठाने की कोशिश कर रही हैं तो बीजेपी को नुकसान हो सकता है। इसी बात को लेकर बीजेपी जातिगत जनगणना के मुद्दे को दबाने की कोशिश में है।**

लेकिन केंद्र सरकार उदासीन रही, उन्होंने कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। हम तो डिमांड कर ही रहे थे। फिर से वाक-युद्ध, फिर से आरोप-प्रत्यारोप जरूर होगा। अब यहां देखना होगा कि किनका तर्क ज्यादा तर्कसंगत है।

अगर हम राजनीतिक स्तर पर देखें तो क्या जातिगत जनगणना होने के पश्चात अपर ओबीसी जैसे- यादव, कुर्मी, कुशवाहा में एवं अतिपिछड़ा में प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाएगी?

प्रतिस्पर्धा तो पहले ही शुरू हो चुकी है। हर राज्यों में ओबीसी के अंदर बहुत सारी जातियां हैं जो संख्या के तौर पर एवं सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण से भी दूसरी जातियों से प्रबल दिखाई देती हैं। बिहार में यादव, कुर्मी ओबीसी जातियां दूसरी जातियों से कहीं ज्यादा सम्पन्न हैं। ये जातियां संख्या की दृष्टि से भी बड़े हैं, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भी सम्पन्न हैं। यूपी में यादवों की संख्या 10-12 प्रतिशत है और और ये आर्थिक-राजनीतिक दृष्टि से वर्चस्वशाली भी हैं। बीजेपी ने अपने 10 सालों की राजनीति में सत्ता-वर्चस्व प्राप्त ओबीसी जातियों को छोड़कर लोअर ओबीसी एवं अत्यंत पिछड़ी जातियों को गोलबंद करने का कार्य किया है। इसमें उन्हें काफी सफलता भी मिली है। प्रतिस्पर्धा तो पहले से ही अपर ओबीसी एवं लोअर ओबीसी में चल रही है। जैसाकि सैफोलॉजी के बारे में हमने चर्चा की है कि आज से 10-15 साल पहले ओबीसी का वोट किन पार्टियों को जाता है। अब हम इस चर्चा के दूसरे बिंदु पर आते हैं। क्या ओबीसी का वोट गोलबंद है। जब हम इस पर विचार करते हैं तो हमें ओबीसी का वोट गोलबंद दिखाई नहीं पड़ता। अपर ओबीसी ऐसे पार्टियों के साथ खड़े दिखाई देते हैं, जिन पार्टियों के साथ कई दशकों से वे जुड़े रहे हैं। लेकिन जो निम्न ओबीसी हैं, उनका झुकाव बीजेपी की तरफ बढ़ना शुरू हो गया है। पिछले चुनाव को ही देखें तो यह बात निम्न ओबीसी में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। बीजेपी ने निम्न ओबीसी में पैठ बना ली है।

कुछ लोगों का तर्क है कि अगर संसाधनों के नाते भारत सरकार पिछड़ों की जनगणना नहीं करा सकती है तो क्यों न उच्च जातियों की ही जनगणना करा लें।

यह तो बहुत ही सिम्पल बात है। आपको जनगणना करने के लिए घर-घर जाना होगा एवं उनसे जाति पूछनी है। वह व्यक्ति चाहे ओबीसी का हो या उच्च जाति का, उसकी संख्या, उसकी जाति की गणना करनी है। इसमें संसाधनों का कोई मामला नहीं है। वैसे भी सेंसस करने वाले सरकारी कर्मचारी घर-घर जाते हैं, दलित-आदिवासी समुदाय के हैं तो उनसे जाति पूछते हैं। ये मामला संसाधन का बिल्कुल ही नहीं है। अगर इस कार्य में कोई समस्या उत्पन्न होती है तो उसे सरकार दूर कर सकती है। जातिगत जनगणना के आंकड़े आने पर ओबीसी की संख्या के आधार पर आरक्षण की मांग जरूर जोर पकड़ेगी। वे नये सिरे से इसकी डिमांड करेगी और पार्टियां इस मुद्दे के इर्द-गिर्द गोलबंद होंगी। जिन पार्टियों का जनाधार अपर कास्ट में ज्यादा है, खासकर हम बीजेपी की बात कर रहे हैं। क्योंकि बीजेपी को हर वर्ग और जाति के लोगों का वोट मिल रहा है। बीजेपी को 2019 के चुनाव में 37 प्रतिशत वोट मिले। लेकिन अनुपात में देखें तो बीजेपी को अपर कास्ट का बहुत ज्यादा वोट मिलता है। तकरीबन 67-68 प्रतिशत उच्च जातियों ने बीजेपी को वोट किया। अगर दलितों में देखेंगे तो लगभग 30-32 प्रतिशत एवं ओबीसी को 40-42 प्रतिशत वोट मिलते हैं। लेकिन बीजेपी को सभी वर्गों का वोट मिल रहा है। उच्च जातियों का झुकाव जिस तरीके से बीजेपी के साथ है, वैसा दूसरे समुदाय या जाति का नहीं है, जब ये आंकड़े सामने आयेंगे, उच्च जातियों एवं ओबीसी की संख्या कितनी हैं, तब तस्वीर दूसरी होगी। अगर ऐसा संदेश जाने लगा कि दूसरी पार्टियां ओबीसी के मुद्दे को ज्यादा प्रबल तरीके से उठाने की कोशिश कर रही हैं तो बीजेपी को नुकसान हो सकता है। इसी बात को लेकर बीजेपी जातिगत जनगणना के मुद्दे को दबाने की कोशिश में है।

बिहार में तेजस्वी यादव ने वहां के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से अनुरोध किया है कि अगर भारत सरकार जातिगत जनगणना नहीं कराती है तो राज्य स्तर पर

अपने यहां करायें। ऐसी ही पहल तमिलनाडु में एम.के. स्टालिन ने भी की है। आपके हिसाब से क्या यह व्यवहारिक एवं लाभदायक होगा?

बिल्कुल व्यवहारिक होगा। जब सरकार जनगणना कराती है तो तमाम सरकारी स्कूल टीचर या सरकारी कर्मचारी, वे घर-घर जनगणना करने जाते हैं। राज्य सरकार के पास जनगणना कराने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं। जगगणना करना कितना लाभदायक होगा? यही प्रमुख सवाल है। राज्य सरकार को इसकी जिम्मेदारी लेनी होगी। उसे अपनी नीतियों में फेर-बदल और परिवर्तन करना होगा। राज्य सरकार यह कर सकती है कि किसको कितना देना है। लेकिन जहां केंद्र सरकार का मामला होगा, लाभ मिल नहीं पाएगा। राज्य सरकार कोई भी जनगणना करा लें, उसका लाभ केन्द्र की स्कीम में नहीं मिलेगा। राज्य सरकार द्वारा कराये गए जनगणना का लाभ राज्य सरकार की स्कीमों में ही मिल सकता है।

आदिवासियों की जनगणना की भी बात आपने की थी। इसी से जुड़ा हुआ एक सवाल है कि देश भर के आदिवासी मांग उठा रहे हैं कि जनगणना के प्रपत्र में उनके धर्म को भी शामिल किया जाए। जबकि इस मामले में सरकार उदासीन है। आप उनकी मांग को कैसे देखते हैं?

भारत सरकार क्यों उदासीन है, यह बड़ा मुद्दा नहीं होना चाहिए। जब भी जनगणना किया जाता है तो धर्म वाले कालम में उसका उल्लेख कर दिया जाता है। आज कुछ राज्यों के आदिवासी अब एक नये धर्म को मानते हैं, जैसे– झारखंड, उड़ीसा जैसे राज्यों में। वे हिंदू धर्म को नहीं मानते हैं, अलग धर्म को मानते हैं। महाराष्ट्र में देख लीजिए आज बौद्ध धर्म के मानने वाले पहले हिंदू धर्म को मानते थे। बाकी आदिवासियों में क्रिश्चियन और हिंदू धर्म भी हैं। अगर जनगणना की प्रक्रिया को सजगतापूर्व देखें, तो आप पाएंगे की सेंसस के धर्म वाले कालम में आदिवासी नहीं लिखा होता है। मेरे समझ से यह सवाल सरकार से पूछा जाना चाहिए। क्योंकि आज भी उनसे धर्म जरूर पूछा जाता है लेकिन धर्म की जो कैटेगरी है, उसमें सुधार करने की मांग उठानी होगी।

मेरा यह सवाल सेंसस करने की प्रक्रिया से ही जुड़ा हुआ है। सरकार अपने तरीके से शिक्षक एवं कर्मचारी भेजती है, उनके बारे में ऐसा कहा जाता है कि वे किसी गांव में जनगणना करने जाते हैं तो एक जगह बैठ जाते हैं या गांव के किसी प्रमुख आदमी को पकड़ लिया तो उससे सारी जानकारी ले लेते हैं। इससे कई परिवारों का सेंसस नहीं हो पाता है। दूसरी बात जो उच्च जातियों से जुड़ी है, वे उच्च जातियों में जाते हैं एवं वहीं से सूचनाएं एकत्र करते हैं। इस पूरी प्रक्रिया को बेहतर बनाये जाने के संबंध में आपका क्या कहना है?

निश्चित रूप से ऐसी घटनायें जरूर घट रही होंगी। जनगणना करनेवाले कई बार अपना काम सही तरीके से नहीं करते हैं। मेरा कहना है कि उन्हें अपना दायित्व अच्छे तरीके से निभाना चाहिए। अगर आपको सरदर्द है तो सरदर्द की गोली खाने पर दर्द ठीक हो जाता है। अगर किसी की तबीयत ज्यादा खराब है तो उसे तमाम तरह के टेस्ट और दवाईयां देने की जरूरत पड़ती है। इस तरह की घटनायें छिट-पुट ही सही, लेकिन हो रही है। यह सरदर्द की तरह है। लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। जनगणना करने वाले हर घर में जायें। हर घर में जाकर इस बात का आंकलन करें कि घर में कितने व्यक्ति हैं, उनकी जाति क्या है। अगर ये गलतियां बड़े पैमाने पर दिख रही हों तो सरकार को इस समस्या को सुलझाने के लिए गंभीरता से सोचना चाहिए। मेरी समझ से यह समस्या इतनी भी गंभीर नहीं दिखाई पड़ती। अगर समुद्र का पानी खारा है, उसमें दो-चार बाल्टी मीठा पानी डाल भी दिया जाए तो भी वह जल खारा ही रहेगा। अगर बहुत सारे लोग ऐसा कर रहे हैं तो हमें सचमुच ही इस जनगणना पर प्रश्नचिह्न लगाने की जरूरत है। लेकिन छिटपुट ऐसी घटनाएं होती हैं। इस काम में यह त्रुटि तो है, लेकिन यह पूरी जनगणना को खराब नहीं कर पाएगी।

आप जातिगत जनगणना को कितना महत्वपूर्ण मानते हैं?

महत्वपूर्ण है या नहीं यह हमें बाद में पता चलता है। लेकिन मेरा मानना है कि इसमें कोई नुकसान नहीं है। अगर मुझे इस मुद्दे पर निर्णय करना होता, तो इतने कंट्रोवर्सी से बचने के लिए जातिगत जनगणना कराने का निर्णय लेता। हम इसी मुद्दे पर जद्दोजहद करने के बजाय क्यों न जातिगत जनगणना करा लें। सेंसस नहीं करवाने पर लोगों में निःसंदेह तरह-तरह की दुविधाएं उत्पन्न होंगी। दलितों, आदिवासियों और ओबीसी की जनगणना करा लेनी चाहिए। वैसे भी जनगणना करने वाले घर-घर जाकर यह पूछते ही हैं। अब हमें उनकी जाति का सेंसस करना है। चाहे वह व्यक्ति ओबीसी का हो या उच्च जाति का हमें समान रूप से जाति का सेंसस करना है। मुझे लगता है इसमें कोई खराबी नहीं है न ही कोई नुकसान है।

(स्रोतः फारवर्ड प्रेस से साभार) ■

बिरसा मुंडा : एक अविस्मृत आदिवासी लड़ाका

राजन कुमार

"मैं केवल देह नहीं
मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूँ
पुश्तें और उनके दावे मरते नहीं
मैं भी मर नहीं सकता
मुझे कोई भी जंगलों से बेदखल नहीं कर सकता
उलगुलान!
उलगुलान!!
उलगुलान!!!"

'बिरसा मुंडा की याद में' शीर्षक से लिखी आदिवासी साहित्यकार हरीराम मीणा के कविता की ये पंक्तियां दावा कर रही हैं कि बिरसा मुंडा का आंदोलन 'उलगुलान' इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भी जारी है। उलगुलान यानी आदिवासियों का जल-जंगल-जमीन पर दावेदारी का संघर्ष।

09 जून, 2022 को बिरसा मुंडा को उनकी 123वीं शहादत दिवस पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आदिवासी समाज के जहन में उलगुलान की आग दहक रही होगी और जंगल पर अपनी दावेदारी को और ज्यादा पुख्ता करने के लिए वे खुद को वचनबद्ध कर रहे होंगे।

जंगल पर दावेदारी को लेकर बिरसा मुंडा द्वारा अंग्रेजी सरकार के खिलाफ आहूत 'उलगुलान' आज स्वतंत्र भारत में भी जारी है। क्योंकि हालात आज भी नहीं बदले हैं।

आदिवासी इलाके भयानक गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण और असंतोष से ग्रसित हैं। आदिवासियों को गांवों-जंगलों से खदेड़ा जा रहा है। दिकू आज भी हैं। जंगलों के संसाधन तब भी असली दावेदारों के नहीं थे और आज भी नहीं हैं। आदिवासियों की समस्याएं खत्म नहीं हुईं बल्कि वे ही खत्म होते जा रहे हैं। सब कुछ जस का तस है। यही कारण है कि जल, जंगल और जमीन के हक लिए हर तरफ आदिवासी गोलबंद हो रहे हैं और बिरसा के 'उलगुलान' की मशाल को जला रखे हैं।

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर, 1875 को वर्तमान झारखंड राज्य के रांची जिला अंतर्गत चालकाड़ के निकट उलिहातु गाँव में माता करमी हातू और पिता सुगना मुंडा के घर हुआ था।

बिरसा मुंडा (15 नवंबर, 1875 - 9 जून, 1900)

उस समय भारत में अंग्रेजी शासन था। आदिवासियों को अपने इलाकों में किसी भी प्रकार की दखल मंजूर नहीं थी। यही कारण रहा है कि आदिवासी इलाके हमेशा स्वतंत्र रहे हैं। अंग्रेज़ भी शुरू में वहां जा नहीं पाए थे, लेकिन तमाम षड्यंत्रों के तहत वे घुसपैठ करने में कामयाब हो गये। अंग्रेजों ने 'इंडियन फारेस्ट एक्ट 1882' पारित कर आदिवासियों को जंगल के अधिकार से वंचित कर दिया। अंग्रेजी सरकार आदिवासियों पर अपनी व्यवस्थाएं थोपने लगी। अंग्रेजों ने ज़मींदारी व्यवस्था लागू कर आदिवासियों के वे गांव, जहां वे सामूहिक खेती करते थे, ज़मींदारों और दलालों में बांटकर राजस्व की नयी व्यवस्था लागू कर दी। और फिर शुरू होता है अंग्रेजों एवं तथाकथित जमींदार व महाजनों द्वारा भोले-भाले आदिवासियों का शोषण।

इसी बीच बिरसा मुंडा बाल अवस्था से किशोरावस्था और युवावस्था में पहुँचते हैं। वह आदिवासियों की दरिद्रता की वजह जानने और उसका निराकरण करने की उपाय सोचते हैं।

आदिवासियों की अशिक्षा का लाभ लेकर गाँव के जमींदार, महाजन अनैतिक सूद-ब्याज में उलझाकर उनकी जमीन लेते रहते थे। आदिवासियों का कर्ज प्रतिदिन बढ़ता ही रहता। महाजन भी तो यही चाहते थे कि आदिवासियों का कर्ज बढ़े और खेत का पट्टा लिखवा लें फिर आदिवासी खेत में काम करें, पालकी उठायें, उनके नासमझ बच्चे खेत पर मुफ्त में पहरा भी देंगे। हुआ भी यही। आदिवासी अपनी ही जमीन पर गुलाम बन गये।

वन के उत्पादों पर आदिवासियों के पुश्तैनी अधिकारों पर पाबंदी, कृषि भूमि के उत्पाद पर लगान और अन्य प्रकार के टैक्स और इन सब के पीछे अंग्रेज अधिकारी, उनके देसी कारिन्दे-सामंत, जागीरदार और ठेकेदार, ये सब आदिवासियों के लिए दिकू (शोषक/बाहरी) थे।

आदिवासियों की हालत बद् से बद्तर होती गई।

बिरसा समझ गया शोषणकारी बाहरी इन्सान होता है और जब तक उसे नहीं भगाया जायेगा तब तक दुःखों से मुक्ति

नही मिलेगी। अपने भाइयों को गुलामी से आजादी दिलाने के लिए बिरसा ने 'उलगुलान' की अलख जगाई।

1895 में बिरसा ने अंग्रेजों की लागू की गयी ज़मींदारी प्रथा और राजस्व व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई के साथ-साथ जंगल-ज़मीन की लड़ाई छेड़ी। बिरसा ने सूदखोर महाजनों के ख़िलाफ़ भी जंग का ऐलान किया। यह मात्र विद्रोह नहीं था। आदिवासी अस्मिता, स्वायत्ता और संस्कृति को बचाने के लिए संग्राम था – उलगुलान।

बिरसा ने 'अबुआ दिशुम अबुआ राज' यानि 'हमारा देश, हमारा राज' का नारा दिया।

देखते-ही-देखते छोटानागपुर के सभी आदिवासी, जंगल पर दावेदारी के लिए गोलबंद हो गये। अंग्रेजी सरकार के पांव उखड़ने लगे। महाजन, जमींदार और सामंत उलगुलान के भय से कांपने लगे।

अंग्रेजी सरकार ने बिरसा के उलगुलान को दबाने की हर कोशिश की, लेकिन आदिवासियों के गुरिल्ला युद्ध के आगे उन्हें असफलता ही मिली। 1897 से 1900 के बीच आदिवासियों और अंग्रेज सिपाहियों के बीच युद्ध होते रहे। बिरसा और उनके अनुयायियों ने अंग्रेजों की नाक में दम कर रखा था। अगस्त 1897 में बिरसा और उनके चार सौ सिपाहियों ने तीर कमानों से लैस होकर खूँटी थाने पर धावा बोला। 1898 में तांगा नदी के किनारे मुंडाओं की भिड़ंत अंग्रेज सेनाओं से हुई जिसमें पहले तो अंग्रेजी सेना हार गयी लेकिन बाद में इसके बदले उस इलाके के बहुत-से आदिवासी नेताओं की गिरफ़्तारियां हुईं।

जनवरी 1900 में उलिहातू के नजदीक डोमबाड़ी पहाड़ी पर बिरसा अपनी जनसभा को सम्बोधित कर रहे थे, तभी अंग्रेज सिपाहियों ने चारो तरफ से घेर लिया। अंग्रेजों और आदिवासियों के बीच संघर्ष हुआ। बंदूक-तोप का सामना तीर-धनुष भला कब तक कर पाते! औरतें और बच्चों समेत बहुत-से लोग मारे गये। बिरसा के कुछ शिष्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। अन्त में स्वयं बिरसा भी 3 फरवरी, 1900 को चक्रधरपुर में गिरफ़्तार कर लिये गये।

जेल जाते समय बिरसा ने लोगों से आह्वान किया, जो आज भी मुंडारी लोकगीतों में गाया जाता है – "मैं तुम्हें अपने शब्द दिये जा रहा हूं, उसे फेंक मत देना, अपने घर या आंगन में उसे संजोकर रखना। मेरा कहा कभी नहीं मरेगा। उलगुलान! उलगुलान! और ये शब्द मिटाए न जा सकेंगे। ये बढ़ते जाएंगे। बरसात में बढ़ने वाले घास की तरह बढ़ेंगे। तुम सब कभी हिम्मत मत हारना। उलगुलान जारी है।" *('आदिवासी शहादत', ए.के. पंकज)*

9 जून 1900 को बिरसा ने रांची के कारागार में आखिरी सांस ली। 25 साल के उम्र में ही बिरसा मुंडा ने जिस क्रांति का आगाज किया वह आदिवासियों के लिए हमेशा प्रेरणादायी रहा।

बिरसा के आंदोलन को अंग्रेजी सरकार बेशक दबाने में कामयाब हो गयी, लेकिन छोटानागपुर के आदिवासियों पर शासन करना लोहे के चने चबाने जैसा हो गया था। जगह-जगह अंग्रेजी सैनिकों को विरोध झेलना पड़ता।

नतीजतन अंग्रेजी सरकार को 'छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट 1908' पारित कर आदिवासी क्षेत्रों को विशेष क्षेत्र घोषित करना पड़ा। इन क्षेत्रों में बिना अनुमति बाहरी आबादी के प्रवेश पर रोक लग गई। आदिवासियों को जंगल में एक सीमा तक अधिकार भी मिल गया। परंतु अपनी जमीन और जंगल पर पूर्ण अधिकार को लेकर संघर्ष तब भी जारी रहा।

आज भी देश के तमाम हिस्से में आदिवासी जंगल पर दावेदारी की लड़ाई लड़ रहे हैं। अपने प्रति निरंतर अपमान, उपेक्षा, शोषण आदि के खिलाफ आदिवासियों का विद्रोही स्वर उठना स्वाभाविक भी है।

स्वतंत्र भारत में जब आदिवासी इलाकों को संघ में शामिल किया गया तो सरकार ने उन्हें भरोसा दिलाया कि उनके हितो की रक्षा की जाएगी। इसके लिए बकायदा संविधान में 'पांचवीं अनुसूची' और 'छठी अनुसूची' में आदिवासियों के लिए विशेष प्रावधान किये गये। इसकी जिम्मेदारी राष्ट्रपति को सौंपी गई। बावजूद इसके किसी भी राष्ट्रपति ने आज तक आदिवासियों का संज्ञान नहीं लिया। घोर उपेक्षा के कारण आदिवासियों की स्थिति जर्जर हो चुकी है। आदिवासी प्रतिरोध के लिए तैयार हो रहे हैं।

मसलन अनेक क्षेत्रों में आदिवासी गोलबंद हो रहे हैं। संविधान की पांचवीं अनुसूची को सख्ती से पालन कराने के लिए आंदोलन की तैयारी कर रहे हैं। अनेक आदिवासी संगठन जल, जंगल, जमीन पर दावेदारी के लिए राजनीतिक और सामाजिक रुप जनजागरूकता अभियान चला रहे हैं। ये सभी संगठन मिलकर बिरसा का उलगुलान जारी रखे हैं। इन सभी के प्रेरणास्रोत हैं बिरसा मुंडा।

इसीलिए तो प्रसिद्ध दिवंगत लेखिका महाश्वेता देवी 'जंगल के दावेदार' उपन्यास के उपसंहार में लिखी हैं – "हम जिस तरह चिरकाल से हैं, संग्राम-बिरसा का संघर्ष भी वैसा है। धरती पर कुछ समाप्त नहीं होता – मुण्डारी देश, धरती, पत्थर, पहाड़, वन, नयी ऋतु के बाद ऋतु – का आगमन – संदर्भ भी समाप्त नहीं होता, इसका अंत हो ही नहीं सकता। पराजय से संघर्ष का अंत नहीं होता। वह बना रह जता है, क्योंकि मानुस रह जता है, हम रह जाते है।"

(लेखक जयस संगठन के लिए पूर्णकालिक सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में काम करते हैं।) ■

सामाजिक लोकतंत्र

(इस कड़ी में जोतीराव फुले, डॉ. भीमराव आंबेडकर, भगत सिंह, सरदार वल्लभ भाई पटेल, जयपाल सिंह मुंडा, डॉ. राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव, मधु लिमये और किशन पटनायक का लेख हम पहले प्रकाशित कर चुके हैं। इस बार जयप्रकाश नारायण, जिनके नेतृत्व में हुई सम्पूर्ण क्रांति के 48 साल हुए हैं, का यह खास भाषण विशेष तौर पर प्रस्तुत कर रहे हैं। उम्मीद है राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए जेपी का यह स्पीच बदले हुए संदर्भों में और भी उपयोगी साबित होगा : सम्पादक।)

जयप्रकाश नारायण

जब राष्ट्रीय प्रजातन्त्र कायम हुआ था, तो उस समय लोगों ने सोचा था कि समाज में एकता कायम होगी, लोगों के कष्ट दूर हो जाएंगे। लेकिन इतिहास ने यह साबित किया कि उनकी यह आशा झूठी थी। जैसे-जैसे लोग पूर्ण प्रजातंत्र की तरफ बढे, बालिग मताधिकर वगैरह मिले, तब भी कष्ट दूर नहीं हुआ। तब लोगों को यह मालूम हुआ कि असल में सत्ता मुट्ठी भर लोगों के हाथ में चली जाती है। एक बड़ा दोष राष्ट्रीय प्रजातन्त्र में है कि जिसके पास प्रचार के साधन अधिक हुए, वह लोगों में अपने विचार को आसानी से फैला सकता है। जिसका विज्ञापन सबसे ज्यादा होता है, आम तरह से उसी चीज को ज्यादा लोग खरीदते हैं—माल उतना अच्छा नहीं हुआ, तब भी। बड़ी-बड़ी कम्पनियों का उदाहरण सामने है।

अब जिस तरह का समाज अभी तक रहा है, उसमें जिसके पास धन अधिक है या समाज में ऊंचा स्थान है, तो शुरू में ऐसा देखा गया कि इनके हाथों में ऐसे साधन थे, जो दूसरों के हाथ में नहीं थे। इसलिए वोट इन्हीं को अधिक मिलते थे।

एक बात और। सामन्तशाही के खिलाफ जब क्रान्ति हुई थी, तो उसका नेतृत्व मध्यमवर्ग के लोगों ने किया था। इस मध्यमवर्ग—जैसे-जैसे वैज्ञानिक प्रगति हुई तो ये लोग– व्यापारी और व्यवसायी दोनों—पहले व्यापारी- उस जमाने में Steam नहीं निकला था—पाल से जहाज चलते थे। जब औद्योगिक क्रान्ति हुई, तो इन्हीं व्यापारियों की पूंजी इसमें लगी। जब जनक्रांति हुई तो इन्होंने ही क्रांति का नेतृत्व किया और जनता भी इन्हीं के नीचे आई।

यह वर्ग अपने हितों को पूरा समझता था। जब तक सामन्तशाही थी, औद्योगिक विकास में बाधा पड़ती थी। पूंजीवाद के साथ-साथ राष्ट्रीयता भी हुई इसलिए कि पूंजीवाद को एक rational society की जरूरत थी। बड़े पैमाने पर चीजों को पैदा करने के लिए यह आवश्यक था। वे जो चीजें पैदा करते थे, उस समय कोई ऐसा क्षेत्र बाजार नहीं था, जिसपर उनका प्रभुत्व हो। इसके अलावा सामन्तशाही बहुत से ऐसे कानून बनाती थी जिससे रुकावट होती थी।

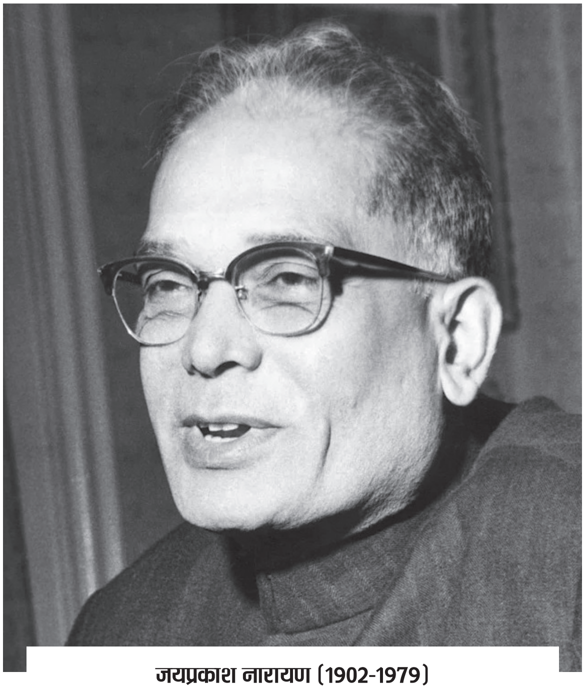

जयप्रकाश नारायण (1902-1979)

सामन्तशाही के छोटे दायरे में पूंजीवाद का विकास सम्भव नहीं था। इसके अलावे बहुत संख्या में मजदूरों की जरूरत थी। यह तब तक संभव नहीं था, जब तक सामंतशाही का राज था। इसके लिए मजदूरों को contract करने की आजादी होनी चाहिए। नहीं तो कहीं वे उनको खेत में लगा दें या पूंजीवादियों को मजबूर करें अधिक मजदूरी देने के लिए।

उस जमाने में न किसानों-मजदूरों का कोई संगठन था, न उनमें कोई चेतना थी। इसलिए राजनीति पर उनका कोई असर नहीं था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि देश की राजनीति इन्हीं पूंजीपतियों के हाथ में गई। अब मध्यमवर्ग शासक की गद्दी पर बैठा और उन्हीं में एक नया मध्यमवर्ग कायम हुआ, पढ़े-लिखे लोगों का। साथ-साथ श्रमिकों का एक दल पैदा हुआ। जो लोग एक आदर्श को लेकर इस क्रान्ति में आये थे और वहां उन्हें कोई आदर्श नहीं मिला, तो उनमें से भी कुछ इस गिरोह में आ गए।

अब यह सवाल उठा कि सिर्फ वोट का होना ही काफी नहीं है। अगर आन्तरिक संगठन जैसा का तैसा रह जाता है, तो मत का अधिकार मिलने से क्या फायदा हुआ? तब वह आवाज उठी कि जिस तरह राजनीतिक सत्ता बांट दी गई, आर्थिक सत्ता भी बांट दी जाए। लेकिन इसे बांटना आसान न था। आर्थिक सत्ता को कैसे बांटा जाए। एक ही तरीका मालूम हुआ- समाजीकरण का। कारखानों का स्वामी कोई व्यक्ति न रहे, कोई व्यक्तियों का समूह न रहे। यह समाजवाद का एक आवश्यक अंग है।

इसी मध्यम वर्ग से नये-नये नेता पैदा हुए। एक नयी विचारधारा चली। इसका स्रोत इस क्रान्ति के आदर्शवादी लोगों से। इन्हीं लोगों ने जब वहां आदर्श नहीं पाया, तो इस तरफ मुड़े। धीरे-धीरे कारखानों में जब मजदूर इकट्ठा हुए, उन्हें कुछ तकलीफ मालूम हुई। वह कैसे दूर हो? संख्या का बल था। इसलिए अपनी तकलीफों दूर करने के लिए उन लोगों ने अपना संगठन कायम करने शुरू किये। इस तरह नई विचारधारा नये विचारकों का होना और मजदूरों का संगठन की तरफ झुकाव दोनों अलग-अलग, लेकिन करीब-करीब एक ही संदर्भ में कायम हुए।

इस नये मध्यम वर्ग ने देखा कि सत्ता तो मुट्ठी भर लोगों के हाथ में है, तो इनका शासक वर्ग की राजनीति से विरोध हुआ। इसके अलावा जब मजदूरों को वोट मिला तो उनके बीच वोट पाने के लिए भी नई-नई पार्टियां बनीं। यूरोप में हर जगह। इस तरह मजदूरों की एक राजनीति पैदा हुई।

अब यह सवाल उठा कि सिर्फ वोट का होना ही काफी नहीं है। अगर आन्तरिक संगठन जैसा का तैसा रह जाता है, तो मत का अधिकार मिलने से क्या फायदा हुआ? तब वह आवाज उठी कि जिस तरह राजनीतिक सत्ता बांट दी गई, आर्थिक सत्ता भी बांट दी जाए। लेकिन इसे बांटना आसान न था। आर्थिक सत्ता को कैसे बांटा जाए। एक ही तरीका मालूम हुआ- समाजीकरण का। कारखानों का स्वामी कोई व्यक्ति न रहे, कोई व्यक्तियों का समूह न रहे। यह समाजवाद का एक आवश्यक अंग है।

अब अपने देश को आप ले लें। एक छोटा-सा वर्ग है। सभी उद्योग-धंधे उसी के हाथ में हैं, जमीन उसी के हाथ में है। वैसे ही रियासतों में काफी जमीनें मुट्ठी भर लोगों के हाथ में हैं। जैसे जोधपुर में 80 फीसदी जमीन जागीरदारों के हाथ में है। दूसरी तरफ मध्यमवर्ग के लोग और किसान मजदूर हैं। अमेरिका में कई बड़े पूंजीपति हैं। यहां के जैसे गरीब दुनिया में कहीं भी नहीं मिलेंगे।

अब जब एक नया देश बना है तो क्या हमें यह पसन्द है कि साधारणतः दुनिया के और देशों में जो कुछ हुआ, वही यहां भी हो या हम एक ऐतिहासिक छलांग मारकर नये समाज का निर्माण करें?

एक जमाना जरूर था जब यह बहस होती थी कि पूंजीवाद अच्छा है या समाजवाद। हमारे देश में कुछ लोगों का यह कहना है कि समाजीकरण होगा, तो suffering होगी। इशारा किया जाता है कि रेलों की तरफ और कहा जाता है कि अगर इन रेलों को बिरला या सिन्धिया को दे दिया जाए तो अच्छा इन्तजाम होगा। इस तरह ब्रिटेन से जो समाजीकरण हमें मिला, हममें से कुछ लोग इसको भी हटाने की बात करते हैं। लेकिन इतिहास ने बताया है कि पूंजीवाद की गाड़ी चलते-चलते एक-ब-एक पहिया रुक जाता है। जैसे economic depression हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि ब्रेक वगैरह टूटने लगते हैं, मध्यमवर्ग impotent हो जाता है। पूंजीवादी लोग अमेरिका का आदर्श सामने रखते हैं। लेकिन अमेरिका में भी हम जानते हैं कि 1929 में depression हुआ था। यही संसार भर में फैला। इसने हिटलर को पैदा किया। दूसरी लड़ाई हुई। इस तरह '29 में जो कड़ी शुरू हुई, वह दूसरी लड़ाई करा के बन्द हुई। यह भी उनके इन्तजाम का नमूना था। चूंकि दूध का दाम घट गया, तो चाहे बच्चे इसके लिए प्यासे मरते हों, पूंजीवाद ने उसको नदी में बहा दिया, ताकि दाम बढ़ जाए। दाम बढ़ाने के लिए सिवाय इसके काई रास्ता नहीं। गेहूं जला दिया गया, इसी के लिए यह सब देख लिया गया, फिर भी ऐसे लोग हैं, जो उनके इंतजाम की तारीफ करते हैं। कुछ सीमित दायरे में हो सकती है, लेकिन उनका आधार ऐसा है कि यह बहुत दूर तक नहीं जा सकती। पूंजीवाद का सबसे बुरा रूप है कि इसके चलते तेल के लिए, रबर के लिए या ऐसे ही और और चीजों के लिए युद्ध होते हैं, और लाखों गरीब बेकार मिट जाते हैं। इसलिए मैं नहीं समझता हूं कि कोई समझदार आदमी आज पूंजीवाद की तरफ होगा। उसकी भलाई भी हम देख चुके हैं– चीजों के पैदा होने में लोगों के जीवन का स्तर उठाने में बड़ी तरक्की यह सब हुआ। लेकिन आज भी जो परिस्थिति है, उसमें पूंजीवाद नहीं रह सकता। आज जो कुछ विज्ञान ने हमारे हाथ में साधन रखा है, उसका प्रयोग कर हम धन पैदा करें और उसका ऐसा वितरण हो कि सबके साथ न्याय हो। किसी की रोटी नहीं छीनी जाए।

जयप्रकाश नारायण : एक संक्षिप्त जीवन सफर

(1902-1979)

बिहार के सिताब दियारा में 11 अक्टूबर 1902 में एक चित्रगुप्तवंशी कायस्थ परिवार में जन्म। बिहार के प्रसिद्ध गांधीवादी ब्रज किशोर प्रसाद की पुत्री प्रभावती के साथ अक्टूबर 1920 में विवाह। विवाह के उपरान्त प्रभा कस्तूरबा गांधी के साथ गांधी आश्रम में रहीं। वे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और सुप्रसिद्ध गांधीवादी डॉ. अनुग्रह नारायण सिन्हा द्वारा स्थापित बिहार विद्यापीठ में शामिल हो गये।

1929 में जब वे अमेरिका से लौटे, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तेज़ी पर था। उनका सम्पर्क गांधी जी के साथ काम कर रहे जवाहर लाल नेहरू से हुआ। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बने। 1932 में गांधी, नेहरू और अन्य महत्त्वपूर्ण कांग्रेसी नेताओं के जेल जाने के बाद, उन्होंने भारत में अलग-अलग हिस्सों में संग्राम का नेतृत्व किया। अन्ततः उन्हें भी मद्रास में सितम्बर 1932 में गिरफ्तार कर लिया गया और नासिक के जेल में भेज दिया गया। यहां उनकी मुलाकात मीनू मसानी, अच्युत पटवर्धन, एन.सी.गोरे, अशोक मेहता, एम.एच. दाँतवाला, चार्ल्स मास्कारेन्हास और सी. के. नारायण स्वामी जैसे उत्साही कांग्रेसी नेताओं से हुई। जेल में इनके द्वारा की गयी चर्चाओं ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (सी.एस.पी.) को जन्म दिया। सी.एस. पी. समाजवाद में विश्वास रखती थी। जब कांग्रेस ने 1934 में चुनाव में हिस्सा लेने का फैसला किया तो जेपी और सी.एस.पी. ने इसका विरोध किया।

1939 में उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, अंग्रेज सरकार के खिलाफ आन्दोलन का नेतृत्व किया। राजस्व रोकने के अभियान चलाये। टाटा स्टील कम्पनी में हड़ताल कराके यह प्रयास किया कि अंग्रेज़ों को इस्पात न पहुंचे। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 9 महीने की कैद की सज़ा सुनाई गई। जेल से छूटने के बाद उन्होंने गांधी और सुभाष चंद्र बोस के बीच सुलह का प्रयास किया। उन्हें बन्दी बनाकर मुम्बई की आर्थर जेल और दिल्ली की कैम्प जेल में रखा गया। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान वे आर्थर जेल से फरार हो गये।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हथियारों के उपयोग को उन्होंने सही समझा। नेपाल जाकर आज़ाद दस्ते का गठन किया और उसे प्रशिक्षण दिया। उन्हें एक बार फिर पंजाब में चलती ट्रेन में सितम्बर 1943 में गिरफ्तार कर लिया गया। 16 महीने बाद जनवरी 1945 में उन्हें आगरा जेल में स्थान्तरित कर दिया गया। इसके उपरान्त गांधी जी ने यह साफ कर दिया था कि डॉ. लोहिया और जेपी की रिहाई के बिना अंग्रेज सरकार से कोई समझौता नामुमकिन है। दोनों को अप्रैल 1946 को आजाद कर दिया गया।

1948 में उन्होंने कांग्रेस के समाजवादी दल का नेतृत्व किया और बाद में गांधीवादी दल के साथ मिलकर समाजवादी सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। 19 अप्रैल, 1954 में गया, बिहार में उन्होंने विनोबा भावे के सर्वोदय आन्दोलन के लिए जीवन समर्पित करने की घोषणा की। 1957 में लोकनीति के पक्ष में राजनीति छोड़ने का निर्णय लिया।

1960 के दशक के अंतिम भाग में वे राजनीति में पुनः सक्रिय हुए। 1974 में बिहार आन्दोलन में उन्होंने तत्कालीन राज्य सरकार से इस्तीफे की मांग की।

वे इंदिरा गांधी की प्रशासनिक नीतियों के विरुद्ध थे। गिरते स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने बिहार में सरकारी भ्रष्टाचार के खिलाफ आन्दोलन किया। उनके नेतृत्व में पीपुल्स फ्रंट ने गुजरात राज्य का चुनाव जीता। 1975 में इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की जिसके अन्तर्गत जेपी सहित 600 से भी अधिक विरोधी नेताओं को बन्दी बनाया गया और प्रेस पर सेंसरशिप लगा दी गई। जेल में जेपी की तबीयत और भी खराब हुई। 7 महीने बाद उनको मुक्त कर दिया गया। 1977 जेपी के प्रयासों से एकजुट विरोधीपक्ष ने इंदिरा गांधी को चुनाव में हरा दिया।

जयप्रकाश नारायण का निधन उनके निवास स्थान पटना में 8 अक्टूबर 1979 को हृदय की बीमारी और मधुमेह के कारण हुआ। उनके सम्मान में तत्कालीन प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने 7 दिन के राष्ट्रीय शोक की घोषणा की थी, उनके सम्मान में कई हजार लोग उनकी शोक यात्रा में शामिल हुए।

स्रोत : विकीपीडिया ■

इस सवाल का आज जो सही उत्तर होगा, संसार उसी को ग्रहण करेगा। हमारी समझ में इसका उत्तर समाजवाद के सिवा और कहीं से नहीं मिल सकता।

पहले उत्पादन के साधन छोटे थे और हर कोई उनको रख सकता था। आज इसके साधन इतने बड़े हो गए हैं, उनके दाम इतने बढ़ गए हैं, हर किसी के लिए यह संभव नहीं। समाज के लिए है और पूंजीपतियों से अधिक अच्छा इस काम को सरकार कर सकती है। पूंजीपति को यह कहा जाए कि आप कोई योजना बनावें और देश का उद्योगीकरण करें। इसका जवाब उन्होंने बिरला-टाटा प्लेन में दे दिया, आज से बहुत पहले बिना सरकार की मदद से। तो सरकार ही यह काम क्यों नहीं करे? अगर लोगों को हुकूमत में पूरा विश्वास (public confidence) हो कि उनका निवेश सफल होगा। और उस पर कुछ

संपति का समाजीकरण होना चाहिए। इसका क्या अर्थ है? जो खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने की चीजें हैं, वे हर व्यक्ति के पास अधिक से अधिक हों। हम चाहते हैं कि हमारा हर परिवार खूब सभ्य, संस्कृत हो। आज समाज में लूट है। थोड़े लोग सभी को लूटते हैं। समाजवादी इस लूट को बन्द करना चाहते हैं। और सभी घरों में आनन्द देखना चाहते हैं। लेकिन यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक उत्पादन के साधन व्यक्ति के हाथ से समाज के हाथ में नहीं चले जाते।

मदद भी सरकार दे- सिर्फ देशभक्ति से काम नहीं चलेगा। तो सरकार से जितनी चाहें, मिल सकती है, करोड़ अरब जितना चाहें। अगर आप विदेशों से कर्जा ले रहे हैं, तो सरकार ले, ये पूंजीपति क्यों लें? किस शर्त पर वे रुपया लेते हैं या उसका कैसे उद्योग में प्रयोग करेंगे? तुरंत लाभ हो, वैसे उद्योग में वे रुपया देंगे और जिसमें मुनाफा कम हो वह नहीं करेंगे। तो फिर वे मुनाफे का उद्योग करें और सरकार उनको मदद करे, जिन पर मुनाफा नहीं होगा। और विदेशों से पूंजी लानी चाहिए। रूस ने अपनी पहली पंचवर्षीय योजना में आधे से अधिक पूंजी विदेशों से ली थी। और विदेशों से रुपया हमें, हमारी अपनी शर्तों पर मिल सकता है। हां, यह विश्वास हो जाना चाहिए कि investment is safe। उदाहरण के लिए रूस को अमेरिका से पूंजी मिली। बस सिर्फ यही जानना चाहिए कि रुपया डूबेगा नहीं, लौट आवेगा। तो इस तरह हम रुपया पूंजीपति से ज्यादा वसूल कर सकते हैं। मशीनरी लेने के ख्याल से सरकार को विदेशों में अधिक आसानी होगी। Technical personel भी सरकार के साथ हैं। आज भी जो हो, वह सरकारी स्कूल, कॉलेजों में ही पढ़ते हैं।

इस तरह उद्योगीकरण के लिए जो तीनों साधन चाहिए, वे सरकार के पास हैं। इसलिए समाजीकरण होना चाहिए और इस उद्योगीकरण से धन मिले, उसका वितरण भी सभी के मर्जी के मुताबिक हो।

जब तक रोटी का सवाल हल नहीं हो, जरूरत की चीजें पैदा हो, कितनी पैदा हों, कैसे वितरण हो, इसका फैसल जबतक जनता के हाथ में न आता, तबतक आर्थिक प्रजातंत्र नहीं हो सकता। जबतक रोटी का सवाल हल नहीं होगा, जबतक जनता की बड़ी-बड़ी समस्याएं दूर नहीं होती, तब तक सच्चा प्रजातंत्र नहीं कायम होगा।

इसके लिए संपति का समाजीकरण होना चाहिए। इसका क्या अर्थ है? जो खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने की चीजें हैं, वे हर व्यक्ति के पास अधिक से अधिक हों। हम चाहते हैं कि हमारा हर परिवार खूब सभ्य, संस्कृत हो। आज समाज में लूट है। थोड़े लोग सभी को लूटते हैं। समाजवादी इस लूट को बन्द करना चाहते हैं। और सभी घरों में आनन्द देखना चाहते हैं। लेकिन यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक उत्पादन के साधन व्यक्ति के हाथ से समाज के हाथ में नहीं चले जाते।

कहीं-कहीं इस बात की भी चर्चा हुई है कि समाजीकरण की आवश्यकता नहीं है। Income Tax लगाकर समाजवाद कायम करो। आज जो टैक्स का रेट है, वह इतना है कि ईमानदारी से कोई चार हजार, या छः से पांच हजार महीना से ज्यादा नहीं कमा सकता। आप कहेंगे यह levelling lower है, लेकिन आज Tax evasion इतना हो रहा है, कि 75 फीसदी पूंजीपति डकार जाते हैं और सरकार को सिर्फ 25 फीसदी मिलता है। तो यह टैक्स की चोरी खूब बढ़ गई है। दूसरा यह कि Capital का अभाव हो गया है। हमसे जिन पूंजीपतियों से मुलाकात होती है, वे कहते हैं, कि जब तक टैक्स की यह दर रहती है, हम पूंजी नहीं लगाएंगे, उद्योगीकरण नहीं हो सकेगा। हम क्यों उद्योगीकरण करें? और उनका कहना स्वाभाविक है। इस तरह यह स्पष्ट है कि जब तक पूंजी का अभाव रहेगा, उद्योगीकरण नहीं हो सकेगा। इस तरह यह निश्चित है कि बिना समाजवाद के, समाज की वर्तमान बुराइयां और समस्याएं नहीं हल हो सकतीं।

(लोकनायक ने यह भाषण समाजवादी पार्टी के शिविर में 15.9.1948 को दिया था।) ■

श्वेता शेखर

(जो कवि कवि/कवयित्रियां हिंदी के भूगोल को अपने रचनात्मक अनुभव वैविध्य से विस्तार दे रही हैं, श्वेता शेखर उनमें मुख्य हैं। उनकी कविताओं में विषय-वैविध्य का विस्तार है और है वहां स्त्री नागरिकता की एक गहन और प्रश्नाकुल अक्खड़ता। शून्यकाल का प्रश्न उनकी कविताओं का एकमात्र संकलन है। समस्तीपुर उनकी जन्मभूमि है और पटना कर्मभूमि : सम्पादक)

शून्यकाल का प्रश्न

मेरी सारी कविताएं
मेरे सारे प्रश्न
मेरी सारी भावनाएं
शून्य काल के प्रश्न की तरह हैं
जो समाधान चाहती हैं
जो नहीं बैठती
समय के निर्धारित खांचे में
तारांकित नहीं
अतारांकित भी नहीं
अल्पसूचित और अनुपूरक
तो बिल्कुल नहीं

ऐसे प्रश्न नहीं बनना चाहतीं ये
जो ठंडे बस्ते में डाल
अगले सत्र के लिये
छोड़ दी जाती हैं
जिसके उत्तर पाने की
संभावनाएं भी
धीरे-धीरे मर जाती हैं

और जरूरी है
जीवित रहने के लिये
संभावनाओं का खुला आकाश
क्योंकि जब तक संभावनाएं
जिंदा हैं
तब तक जीवित हैं हम
और जीवित हैं प्रश्न

और जब तक जीवित हैं प्रश्न
चाहे ना चाहे
शून्यकाल में
उठते ही रहेंगे सदा
अपनी पूरी ताकत के साथ
और उठ कर
अपना उत्तर मांगेंगे जरूर।

दादाजी का दालान

कटहल, आम, लीची, केला और बेल
से घिरा था दादाजी का
छोटा-सा दालान
सुर्खी ईंट पर जोड़ा हुआ
जो नहीं सह सकता था कोई
बड़ा भूकम्प का झटका
बह सकता था
बूढ़ी गंडक के हहरल
आये बाढ़ में भी
पर दहा नहीं कभी हमारा दालान
दादी हमेशा कहती थी
तनिक ऊंचका पर
बना है दालान

रहते थे दादा-परदादा
दालान में
और माई-पुतुरिया
घरारी पर
अन्हरिया होने से पहले ही
मकई की रोटी
दूध में सान कर
खाते थे परदादा
नहीं तो बिला जाता था
उनका भूख
और तमतमा जाता था
गुस्से से उनका माथा
दालान की शोभा रहती थी
गाय और भैंस
एक किनारे था कुंआ
जिस पर आते थे
पानी भरने सब
और वहीं हो जाता था
बोलना-बतियाना

वक्त बदलता गया
और दालान ने देखा
शादी-बियाह से लेकर
छठ्ठी-छीला तक
मरणी-हरणी से लेकर
पंचायती तक

अब जाती हूं गांव तो
पहले वाला उछाह नहीं आता
टुकड़ों में बंटे आंगन को देखकर
आती है रुलाई
याद आता है बीता बचपन
जवानी की पहली अंगड़ाई
और हंसती-खिलखिलाती
हम बहनों का भागना-दौड़ना

एक कसक-सी उठती है
मन में
पुश्तैनी बंटवारे में
भाईयों को मिलता
जमीन-ज्यादाद, घर-द्वार
और बहनों के हिस्से आता
बंटवारे का दर्द।

दर्ज किया जाता है

दर्ज किया जाता है कि
इस व्यक्ति ने
कानून तोड़ा है तालाबंदी का
जबकि कहा गया था
कैसे भी हालात हों
घर से नहीं निकलना है बाहर
फिर भी यह रोटी की तलाश में
क्यों निकला बाहर

दर्ज किया जाता है कि
इस व्यक्ति ने सरकार का कहना
नहीं माना
जब नहीं जाना था
परदेश से अपने देश
तो भी मोटरी-गेठरी संग
यह सैकड़ों मील दूर
कैसे चला आया वापस

दर्ज किया जाता है कि
इसने अपने मन का किया
चलते-चलते थक गया
तो गिर कर मर गया
भूखी से अंतड़ियां ऐंठ रही थी तो क्या
थोड़ा सब्र नहीं रख सकता था
इधर देखो
एक-दो दिन में होने को था
बाल-बच्चा
पर चल पड़ी अपने मर्द के साथ
अब सड़क पर जनों
और थू-थू कराओ सरकार की

दर्ज किया जाता है कि
इन सबों ने तोड़े अनुशासन
इसलिए अपने किये के
हैं स्वंय उत्तरदायी
बाकी सरकार तो
जी जान से लगी है
राहत पैकेज की घोषणा में
युद्ध स्तर पर बैठकें जारी है
इधर भी कम क्रांतिकारी नहीं बैठे
टीवी और फेसबुक पर
गरमागरम बहस जारी है

और अंत में
दर्ज किया जाता है कि
जो मर गये
या मारे गये
जो भूखें हैं
जिनके पैरों में छाले पड़ें हैं
सरकार की सारी संवेदनाएं
उनके साथ है
पर समयाभाव के कारण
अन्य महत्वपूर्ण कामों पर
ध्यान दिया जाना है ज्यादा जरूरी

फिलहाल अभी
लखनऊ हवाई अड्डे की नीलामी
चल रही है।

जगदानन्द सिंह, प्रदेश अध्यक्ष, राष्ट्रीय जनता दल, वीरचन्द पटेल पथ, पटना-1 द्वारा प्रकाशित एवं वितरित। संपादन : अरुण आनंद, सहयोग : कविजी

10 सर्कुलर रोड में बिहार विधान मंडल के राजद सदस्यों की बीच माननीय अध्यक्ष श्री लालू प्रसाद जी का संबोधन। समग्र सदस्यता अभियान को लेकर आहूत की गई इस गोष्ठी में यह निर्णय लिया गया कि बिहार में प्रत्येक बूथ दस यूथ को क्रियाशील करते हुए एक करोड़ से अधिक लोगों को राजद सदस्य बनाया जाए।

पार्टी गतिविधियां

सीपीआई के महासचिव डी. राजा और नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव : मिलन का एक आत्मीय क्षण।

महागठबंधन के प्रतिनिधि सम्मेलन में नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की उपस्थिति का का एक दृश्य।

राष्ट्रीय जनता दल कार्यालय, बिहार द्वारा आदेशित तथा हमारा प्रेस, डोरण्डा, रांची द्वारा मुद्रित, मो. 9334424709